कुरुक्षेत्र

जून 1991

मूल्य तीन रुपये

पर्यावरण प्रदूषण : एक चुनौती

26 जून के अवसर पर

नशे का संसार : अंधकार ही अंधकार

राकेश शर्मा

यह बात उन दिनों की है जब मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में बी.ए. का छात्र था। मेरी कक्षा में एक लड़का था महेश। महेश एक मेधावी छात्र था, बी.ए. की परीक्षा उसने अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण की। परीक्षा के उपरान्त उसकी और मेरी मुलाकात कई वर्षों तक न हो सकी। एक दिन जब मैं कनाट प्लेस में घूम रहा था, अचानक मेरे बराबर से फटे-हाल-सा एक लड़का निकला, जिसकी आंखें चढ़ी हुई थीं। मुझे वह कुछ जाना-पहचाना लगा। जब मैंने चलते-चलते अपने दिमाग पर जोर दिया तो मुझे याद आया अरे! यह तो वही महेश है। इसकी क्या हालत हो गई। और एक कदम पीछे मुड़ कर मैंने उसको आवाज दी तो वह रुका नहीं। मैं बिल्कुल उसके पास गया और कंधे पर हाथ रखकर पूछा कि तुम बोलते क्यों नहीं, महेश। क्या मुझे पहचाना नहीं? लगता था वह अपने दिमाग पर जोर तो डाल रहा है परन्तु उसे कुछ याद नहीं आ रहा था। फिर मैंने उसको कालेज की कुछ बातें याद दिलाईं तो वह फफककर रोने लगा। मैंने पूछा कि तेरी यह हालत कैसे हुई, वह बोला नशे की लत के कारण। नशे की आदत कैसे लगी पूछने पर उसने बताया कि वह एम.ए. की पढ़ाई करने के लिए कालेज होस्टल में रहने लगा था, वहीं पर दोस्तों के कहने पर स्मैक लेने लगा और धीरे-धीरे उसकी ऐसी हालत हो गई कि वह न तो पढ़ाई ही जारी रख सका और न ही जीवन-यापन का कोई कार्य कर सका।

महेश जैसे न जाने कितने युवा ऐसे हैं जो इस बुरी आदत के गुलाम बनकर रह गए हैं। ऐसा नहीं है कि यह आदत केवल विश्वविद्यालय परिसर में ही देखने को मिलती है बल्कि आज तो अनेक शहरों, नगरों और यहां तक कि गांवों में भी देखने को मिल जाएगी। आखिर सवाल यह उठता है कि व्यक्ति खासकर युवा वर्ग नशे के गुलाम क्यों हो जाते हैं? इसके कुछ मुख्य कारण इस प्रकार हैं।

युवकों की प्रवृत्ति स्वभावगत उत्सुकता की होती है। जब भी कोई नई वस्तु देखते हैं तो उनमें उसको इस्तेमाल करने की इच्छा जाग्रत होती है। इसी प्रवृत्ति के कारण वे नशे की वस्तुओं जैसे सिगरेट, तम्बाकू, शराब, स्मैक, हेरोइन आदि का स्वाद चखते हैं और धीरे-धीरे उसके आदी बन बैठते हैं।

युवा वर्ग अक्सर इस गलतफहमी में रहता है कि नशे की वस्तु का प्रयोग कर वह एक काल्पनिक लोक में पहुंच जाता है। इसके लिए वह इन चीजों का इस्तेमाल करने लगता है। उनकी यही सोच उन्हें काल्पनिक स्वर्ग के स्थान पर वास्तविक नर्क की ओर ढकेल देती है।

एक अन्य भ्रान्ति फैली हुई है कि नशीली वस्तुओं के सेवन से शारीरिक, मानसिक क्षमता में बढ़ोतरी होती है। अतः वे इन नशीली दवाओं को खाने लगते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब खेल के मैदान में खिलाड़ी नशे की वस्तु का सेवन करने का दोषी ठहराया गया। जबकि इन वस्तुओं के सेवन से क्षणिक मात्र ही स्फूर्ति, शक्ति तो प्राप्त हो सकती है परन्तु समय अंतराल के उपरांत यह अपना बुरा प्रभाव शरीर पर छोड़ जाती है।

आधुनिक युग में किसी भी खुशी के अवसर पर शराब आदि का सेवन अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। यह एक सम्भ्रांत समाज का प्रतीक भी बन गया है। ऐसे अवसरों पर शराब न पीने वाला व्यक्ति भी नशे के इस फंदे में शीघ्र ही फंस जाता है। और ऐसे अवसरों पर शराब न पीने वाले व्यक्ति को हीन दृष्टि से भी देखा जाता है।

खुशी के विपरीत जब कभी किसी व्यक्ति को किसी प्रकार का दुख महसूस होता है तो उसका एकमात्र इलाज वह शराब, स्मैक आदि वस्तुओं में ढूंढने की कुचेष्ठा करता है और सोचता है कि इनके सेवन से उसके मन और मस्तिष्क को शांति मिलेगी जो उसे नशे के दलदल में ढकेल देती है।

जैसा कि कहा जाता है कि बच्चे परिवार का दर्पण हैं। कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि जिस परिवार के मां-बाप, दादा, चाचा, बड़ा भाई आदि इन नशीले पदार्थों का सेवन करने वाले होते हैं, उन परिवारों के बच्चे और युवा नशे के शीघ्र आदी बन जाते हैं।

(शेष आवरण पृष्ठ III पर)

वर्ष—36, अंक 8, ज्येष्ठ-आषाढ़ शक-1913

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

विज्ञापन प्रबंधक : वैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : बसवंत सिंह
सहायक व्यापार
व्यवस्थापक : शकुन्तला
उत्पादन अधिकारी : के. आर. कृष्णन्

आवरण पृष्ठों की
साज सज्जा : अलका नय्यर
पारदर्शी : फोटो डिवीजन

एक प्रति : 3.00 रु.
वार्षिक चंदा : 30 रु.

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

विषय सूची

तालाब और ग्रामीण पर्यावरण 2
नरेश बहादुर श्रीवास्तव

गांवों में भी बढ़ रहा है पर्यावरण प्रदूषण! 4
राजेश बहादुर

हरियाली (कविता) 5
भानुप्रताप सिंह

वन संरक्षण : क्यों और कैसे? 6
श्याम मनोहर व्यास

भारत में वन संसाधन : आवश्यकता एवं विकास 8
डा. गजेन्द्र पाल सिंह

प्राकृतिक संसाधनों को खत्म करता हुआ "मशीनी मानव" 10
चन्द्रकांत चन्द्रेश

वृक्षारोपण की व्यक्तिक हितग्राही योजना आदिवासियों के लिए हितकारी 12
अशोक कुमार यादव

वन उपजाएं/वृक्षारोपण (कविता) 13
कलीम अव्वल/छीतरमल सोनी

पर्यावरण और हम 14
गदाधर भट्ट

गरीबी दूर करने में भूमि सुधारों का महत्व 16
प्रो. सुशील शर्मा एवं डा. शैलेन्द्र बाजपाई

राजीव गांधी—एक श्रद्धांजलि 19
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

पर्यावरण की रक्षा से पृथ्वी की सुरक्षा 23
डा. राकेश अग्रवाल

पर्यावरण 27
विनय जोशी

पर्यावरण को जोखिम की ललकार 31
ब्रजलाल उनियाल

पर्यावरण में घुलता धीमा जहर 34
हनुमान सिंह पवार

ग्रामीण सहभागिता—एक मूल्यांकन 37
प्रोफेसर नीला मुखर्जी

पुस्तक समीक्षा 40
सुबोध कुमार शर्मा

नशे का संसार : अंधकार ही अंधकार आवरण पृष्ठ II-III
राकेश शर्मा

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

तालाब और ग्रामीण पर्यावरण

नरेश बहादुर श्रीवास्तव

भारतवर्ष ऐतिहासिक रूप से कृषि प्रधान देश है और आज भी देश की ग्रामीण जनसंख्या 76.7 प्रतिशत है। कृषि का आधार यदि प्राकृतिक रहता तो आज की पर्यावरणीय गिरावट की समस्या न हुई होती। खैर, जो भी हुआ समय की परिवर्तनशीलता, वैज्ञानिक खोजों, औद्योगिक विकास और जनसंख्या वृद्धि के कारण हुआ। आज की स्थिति पर्यावरणीय संदर्भ में विश्व-व्यापी चिंतन की स्थिति है। भारत भी इस चिंतन में विश्व के साथ है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि भारत के पास इतिहास से सीखने के लिए बहुत कुछ है, जो इतिहास होकर भी कृषि के साथ, ग्राम्य जीवन के साथ, ग्रामीण परिवेश व समाज के साथ तथा व्यापक रूप से पर्यावरण के साथ आज भी जुड़ा हुआ है। इन सभी के जोड़ में सबसे बड़ा योगदान है—तालाबों का। तालाबों की उपयोगिता का न केवल मूल्यांकन आवश्यक है वरन् इनका संरक्षण, विकास एवं नये तालाबों का निर्माण भी आवश्यक है।

वस्तु स्थिति

तालाबों के समीप गांव होते हैं या गांवों के समीप तालाब—यह दोनों कथन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आज भी गांव के समीप, किनारे तथा कभी बीच में भी तालाब पाये जाते हैं। परन्तु इन तालाबों का उपयोग व्यवहारिक स्थिति में उतना नहीं हैं, जितना लगभग 100 वर्ष या उससे पूर्व था। परन्तु इनकी उपयोगिता को कोई कैसे झुठला सकता है? यह अवश्य है कि लोगों ने इन्हें संभाला नहीं है तथा बहुत-से तालाबों का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया है। आइए, इनकी व्यवहारिक वस्तु-स्थितियों का अवलोकन करें। तालाबों को छोटे, बड़े, पुराने, नये, पक्के, कच्चे, प्राकृतिक व कृत्रिम आदि रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। वास्तव में गांव के आकार व जनसंख्या के साथ ही तालाबों के आकार व संख्या में सामंजस्य पाया जा सकता है। बड़े गांव के तालाब बड़े व संख्या में एक से अधिक होते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में प्राकृतिक व मैदानी क्षेत्रों में प्रायः कृत्रिम तालाब पाये जाते हैं। गांवों के बसने के साथ ही तालाबों के बनने की बात भी सच है। हमारे गांव में पुराना तालाब भी है और नया तालाब भी। नये तालाब का नाम ही नया ताल है और उसके चारों ओर के टीले तालाब की खुदाई से निकली मिट्टी के ढेर हैं। जबकि पुराने तालाबों के आसपास के टीले अब अपनी ऊंचाई खो चुके हैं और खेत बन चुके हैं।

तालाब के लाभ

आवास सम्बन्धी लाभ-गांवों के कच्चे मकान तालाबों की मिट्टी से बनते थे व उनकी मरम्मत भी तालाबों की मिट्टी से की जाती थी। इस हेतु गर्मियों के मौसम में तालाबों की मिट्टी निकाल ली जाती थी और इससे मकानों की मरम्मत होने के साथ-साथ तालाबों की जलगृहण क्षमता भी बढ़ जाती थी। अब गांवों के मकान भी पक्के होने लगे हैं और लोग तालाबों को पाटकर अपने घर-आंगन तथा खेतों के क्षेत्रफल को बढ़ा रहे हैं।

बाढ़ और सूखा से बचाव सम्बन्धी लाभ-वर्षा-ऋतु में वर्षा जल संग्रह करने के सर्वश्रेष्ठ साधन तो तालाब ही हैं। इसलिए यह वर्षा-ऋतु की बाढ़कारी स्थितियों से बचाव करने का कार्य करते हैं। यदि तालाबों की गहराई व विस्तार अच्छा है तो इनकी जलगृहण क्षमता भी अच्छी होगी। इस प्रकार तालाबों में संचित वर्षा जल, जाड़े व गर्मी में काम आने के साथ-साथ छोटे-मोटे सूखे की स्थितियों पर काबू पाने का साधन भी है। तालाबों में लगाये गये कमल के पत्ते संचित जल का वाष्पन रोकते हैं और रात की गिरी ओस की बूंदों को जल में मिला देते हैं। इस प्रकार तालाब और उनकी वनस्पति हमें लाभ पहुंचाती है।

पशु-पक्षियों व जंगली जानवरों के लिए पेयजल—पशु-पक्षियों व जंगली जानवरों की प्यास आज के सिंचाई के साधन यथा नहरें या नलकूप नहीं बुझा पाते। इनमें पानी का प्रवाह सीमित समय के लिए होता है, जबकि इन जीवों को सदैव जल चाहिए।

आजीविका के साधन—मछली पालन तालाबों से जुड़ा व्यवसाय है। विधिवत मछली पालन के बिना भी गांव के कहार/मछुआरे तालाबों से मछली पकड़कर तथा कमल ककड़ी व सिंघाड़े का उत्पादन करके अपनी जीविका चलाते हैं।

पौष्टिक मखाने या ताल मखाने कमल के फल से मिलते हैं और कुम्हार के द्वारा बनाए गए बर्तन व खिलौने तालाब की मिट्टी से बनते हैं।

सिंचाई के साधन—तालाब से बेड़ियों के द्वारा या पम्प सेट लगाकर आस-पास के खेतों की सिंचाई सुगम है। नहर का पानी विभिन्न भूमियों से होकर आने के बाद जिस खेत में लगाया जाता है, उसकी उपजाऊ शक्ति को घटाता है जबकि तालाबों का जल सिंचाई के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है।

जलीय पौधों एवं जीव जन्तुओं के आश्रय—कमल पुष्पों से भरा तालाब आंखों को मनोहारी लगता है और अपनी सुगंध से गांव को भर देता है। बगुले, सारस, जलमुर्गी, घोंघे, केकड़े, सांप, मेंढक, मछली, झींगे तथा अन्य जीव-जन्तु भी तालाब में आश्रय पाते हैं। मृदा-शोधन व पर्यावरणीय सन्तुलन में इनका बड़ा योगदान रहता है।

वातानुकूलन का कार्य—बड़े तालाबों का जल गर्मियों में दिन के समय हवा की गर्मी कम करके उसकी शुष्कता घटाता है। जाड़ों में रात में ठंडी वायु का ताप बढ़ाता है। इस प्रकार तालाब पर्यावरण व वातावरण को मानवीय जीवन की आवश्यकता के अनुरूप बनाते हैं।

ग्राम समाज के आधार—तालाब ग्रामीण समाज की रीति-रिवाजों के केन्द्र बिन्दु भी हैं। इनके आसपास मेलों के आयोजन, जन्म एवं मुण्डन संस्कार, विवाह संस्कार व मृत्यु बाद के संस्कारों में कुछ ऐसे आयोजन भी होते हैं, जो प्रायः तालाब के किनारे किये जाते हैं। सामूहिक स्नान तो तालाब में ग्रामवासी बहुत-से प्रसंगों में करते ही हैं।

इन सभी उपयोगिताओं के होते हुए भी नये तालाबों का निर्माण न किया जाना, पुराने तालाबों का सुधार न होना तथा तालाबों के बारे में आम आदमी में जागरुकता न होना एक चिन्ता की बात है। इस चिन्ता के कारण व उनके निराकरण पाना भी आवश्यक हैं।

तालाबों की दुर्दशा सम्बन्धी परिस्थितियां आजादी के बाद अधिक बढ़ गई हैं। विज्ञान और तकनीकी विकास का अपनाया जाना तथा न्याय व्यवस्था एवं सामाजिक न्याय का समस्याग्रस्त होना, तालाबों की दुर्दशा का बहुत बड़ा कारण भी इस दुर्दशा में विलक्षण वृद्धि हुई है। यह चिन्ताकारक समस्यायें इस प्रकार हैं:—

किसानों व ग्रामीणों द्वारा तालाब क्षेत्र का अतिक्रमण—राजकीय कारणों या पंचायतों के आय के साधन जुटाने के चक्कर में तालाबों के आसपास की ऊंची भूमि भी जुताई-बुवाई के काम आने लगी है। टीलों के घास के कवच मिट गये हैं और वर्षाकालीन भूमि कटाव से मिट्टी बहकर तालाबों की तली में जाते रहने से उनकी जलग्रहण क्षमता, गहराई, क्षेत्रफल—सभी कुछ कम हो गया है।

तालाब क्षेत्र के संरक्षण सम्बन्धी नियमन का अभाव—तालाबों की सीमाओं के नियमन व उनके संरक्षण की कोई निर्दिष्ट प्रक्रिया न होने के कारण तालाब उपेक्षित रहते हैं। ग्रामीण पर्यावरण के सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटक की यह स्थिति, अत्यधिक चिंता का विषय है। तालाबों की दुर्दशा के प्रति अतिक्रमणकारियों अथवा अन्य नकारात्मक पहलुओं की कारगुजारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का कोई विभाग प्रशासन तंत्र में नहीं है।

तालाब क्षेत्र को घटाने वाले प्राकृतिक कारण—वर्षा काल के बाद ज्यों-ज्यों तालाबों में जल कम होता जाता है, तालाब में बेशर्म नामक झाड़ियों व अन्य वनस्पतियों का जमाव होने लगता है। इनके साथ कूड़ा-करकट भी तालाब में इकट्ठा होकर तालाब को पाटने का कार्य करता है। तालाबों की नियमित सफाई व गहराई बढ़ाने के उत्तरदायी विभागों के अभाव में तालाबों का क्षेत्र घट रहा है। बहुत-से तालाब तो खेतों में बदल गये हैं और कुछ तालाब गांव के भीतर लोगों के आंगन बन चुके हैं।

जन सामान्य में तालाब सम्बन्धी जागरुकता की कमी—तालाबों का अस्तित्व ग्राम्य जीवन व उसके पर्यावरण के लिये कितना उपयोगी है—यह ग्रामीणों को ज्ञात ही नहीं है। उनकी उदासीनता भी तालाबों की दुर्दशा का एक महत्वपूर्ण कारण है। नलकूपों के अधिकाधिक विस्तार ने उन्हें तालाब जैसे सिंचाई के पौराणिक साधन के प्रति उदासीन बना दिया है।

तालाबों की व्यवस्था के इन नकारात्मक पहलुओं का निदान आवश्यक है। ग्रामीण पर्यावरण में तालाब, उनकी उपयोगिता व संरक्षण की आवश्यकता जैसी बातें प्राइमरी/मिडिल स्कूलों के बच्चों को सामाजिक विषयों के अन्तर्गत पढ़ाई जानी चाहिए। गांव पंचायतों को तालाब सरक्षण व नए तालाबों की खुदाई के कार्यक्रम अपनाने चाहिए। विकास अधिकारियों व बाढ़ नियंत्रण अधिकारियों को बाढ़ व सूखा नियंत्रण कार्यक्रमों में पुराने तालाबों का विस्तार एवं नये तालाबों के निर्माण का कार्यक्रम अपनाना चाहिए।

सी-7/150 केशव पुरम,
लारेंस रोड,
दिल्ली-110035.

गांवों में भी बढ़ रहा है पर्यावरण प्रदूषण!

राजेश बहादर

आज पर्यावरण प्रदूषण की समस्या एक विश्व-व्यापी समस्या बन चुकी है। शहरों तथा गांवों में पर्यावरण प्रदूषण का प्रत्येक स्वरूप मानव सभ्यता के लिए चुनौती बन गया है। आज शहरों में जहां एक ओर औद्योगिक प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण से स्थिति गम्भीर होती जा रही है, वहीं दूसरी ओर गांवों में भी पर्यावरण प्रदूषण का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। गांव में प्रदूषण के बढ़ने से हमारे नैसर्गिक वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है। आज गांव में इसके प्रति लोगों को जागृत करना बहुत आवश्यक है।

गांवों में प्रदूषण का स्वरूप

आज गांवों में पर्यावरण प्रदूषण के अनेक स्वरूप देखने को मिलते हैं, जिनमें प्रमुख हैं मृदा प्रदूषण, जल प्रदूषण, वनों की कटाई से उत्पन्न प्रदूषण तथा जीवाश्म ईंधन के दहन से उत्पन्न प्रदूषण। अधिक समय तक भूमि में अवशेष के रूप में रहने वाले कीटनाशी, शाकनाशी आदि के अधिक प्रयोग तथा रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग से गांवों में मृदा प्रदूषण उत्पन्न हो रहा है। कुछ रसायन तथा उनके अवशेष इतने स्थायी होते हैं कि उनके अवशेष वर्षों तक मृदा में रहते हैं, जो कि आगे चलकर प्रदूषण का कारण बनते हैं। गांवों में नदियों, तालाबों, नहरों तथा पोखरों के जल दिन-प्रतिदिन प्रदूषित होते जा रहे हैं, जिसका प्रमुख कारण है—नदियों के किनारे मल-मूत्र त्यागना, गंदे वस्त्र धोना, स्वयं नहाना तथा जानवरों को नहलाना। इसके अतिरिक्त नदियों में अवशिष्ट पदार्थ डालना। दूसरी तरफ कृषि के क्षेत्र में लगातार वृद्धि होने से वन क्षेत्र कम होता जा रहा है। बढ़ती जनसंख्या के दबाव से ग्रामीण क्षेत्रों के वन बड़ी तेजी से कटते जा रहे हैं। आज प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र की उपलब्धता 2 हैक्टेयर से घटकर 0.05 हैक्टेयर हो गई है, जिससे पर्यावरण असन्तुलन बढ़ता जा रहा है। गांवों में ईंधन के रूप में कोयले, लकड़ी, गोबर के कंडे तथा पौधे के सूखे डंठलों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु जीवाश्म ईंधन के दहन से प्रदूषण उत्पन्न होता है। ये जीवाश्म ईंधन के गंदे कूड़े-करकट, गीली लकड़ी या अधिक धुआं देने वाले कोयले के दहन से उत्पन्न हो सकता है। गांवों में ईंधन के रूप में इसका प्रचलन बढ़ गया है। इस प्रकार के ईंधन के जलने से वायुमण्डल में कार्बनमोनो आक्साइड तथा अनेक प्रकार के हाइड्रोकार्बन आदि पैदा होते हैं, जो प्रदूषण का मुख्य स्रोत होता है। एक अनुमान के अनुसार कुल प्रदूषण का लगभग एक तिहाई भाग रसोईघरों से ही पैदा होता है।

प्रदूषण के दुष्परिणाम

गांवों में उत्पन्न होने वाले इन प्रदूषणों के अत्यन्त ही गम्भीर दुष्परिणाम हो सकते हैं। प्रदूषित मृदा में उगाई जाने वाली फसलों में विषैले तत्व पहुंचते हैं, जो मनुष्यों या जानवरों द्वारा प्रयोग करने पर उन्हें रोगग्रस्त कर देते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी लगातार उपस्थिति से मृदा में विद्यमान सूक्ष्म जीव अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रिया नहीं कर पाते, जिससे मृदा की स्वाभाविक उत्पादन क्षमता घट जाती है। प्रदूषित जल के भी गम्भीर परिणाम होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रतिवर्ष 5 लाख बच्चे प्रदूषित जल के कारण मर जाते हैं। प्रदूषित जल में अनेक प्रकार के रोग और कीटाणु होते हैं। प्रदूषित जल से हैजा, पेचिश, पीलिया, डायरिया आदि अनेक बीमारियां हो सकती हैं। दूसरी तरफ वनों की कटाई से भी गांवों में पर्यावरण प्रदूषण की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इससे जल द्वारा मृदा अपरदन की सम्भावना तथा भूमि कटाव की मात्रा भी बढ़ी है। वनों के कटने से वायुमण्डल में आक्सीजन की मात्रा घटती जा रही है तथा कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष वायुमण्डल में लगभग 2 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ती जा रही है तो दूसरी ओर पिछले सौ वर्षों में वायुमण्डल की 24 लाख टन आक्सीजन समाप्त हो चुकी है। स्पष्ट है कि इसका मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है। दूसरी तरफ गांवों में दूषित ईंधन के दहन से उत्पन्न धुआं ग्रामीणों के स्वास्थ्य पर बुरा असर डाल रहा है, जिससे उनके शरीर में आक्सीजन संचार के लिए अभीष्ट हीमोग्लोबिन की मात्रा कम होती जा रही है।

रसोईघरों में काम करने वाली ग्रामीण महिलाएं रक्त-अल्पता का शिकार होने लगी हैं। एक अनुमान के

अनुसार भारत में 40-45 प्रतिशत अल्पवयस्क लड़कियां एवं 30-35 प्रतिशत महिलाएं रक्त-अल्पता की शिकार हैं। इस प्रकार के धुएं में विद्यमान फार्मेल्डीहाइड से आंख, नाक, गले और त्वचा में जलन होती है। अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि धूम्रपान करने तथा धुएं के सम्पर्क में रहने वालों के रोगों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है।

उपाय क्या करें?

मृदा प्रदूषण की रोकथाम के दो उपाय हैं। पहला समय-समय पर मृदा परीक्षण कराया जाए, दूसरा भूमि में अवशेष के रूप में रहने वाले कीटनाश तथा शाकनाशी का कम प्रयोग किया जाए, साथ ही रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग सीमित मात्रा में किया जाए। जल प्रदूषण से बचाव के लिए नदियों, तालाबों तथा पोखरों के पानी में कूड़ा-करकट न डाला जाए। समय-समय पर सफाई की जाती रहे तथा पीने के पानी को उबालकर प्रयोग में लाया जाए। पर्यावरण प्रदूषण से बचाव के लिए वृक्षों को कटने से रोका जाए तथा वनों को आग, चरागाह, अवैध कटान तथा मानव द्वारा अति दोहन से निरन्तर बचाया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षादित भूमि पर पुनः वृक्ष लगाए जाएं। सड़कों तथा नहरों के किनारे पंचायती भूमि पर वृक्षारोपण कार्यक्रम को अभियान के रूप में चलाया जाए। पर्यावरण सुरक्षा के लिए महुआ, बडहल, नीम, इमली, बरगद तथा पीपल आदि के वृक्ष उपयोगी होते हैं। मैदानी क्षेत्रों में यूकेलिप्टस, बबूल, सूबबूल, ढाक आदि के वृक्ष उपयोगी सिद्ध होते हैं। धुएं के दुष्परिणाम से बचने के अनेक उपाय हैं। गांवों में उन लकड़ियों को जलाया जाना चाहिए, जो कम धुआं देती हैं, जैसे—बबूल, कैंथा आदि, जबकि नीम से बहुत धुआं निकलता है। इसके अतिरिक्त धुएं से बचने के लिए रसोईघरों में हवादार रोशनदानों का प्रयोग होना चाहिए तथा चिमनीदार चूल्हा प्रयोग में लाना चाहिए। इसके लिए निर्धूम चूल्हा अच्छा विकल्प बन सकता है।

गांवों में प्रदूषण के बढ़ने से ग्रामीण जन-जीवन बुरी तरह प्रभावित हो सकता है। आज भी गांवों में अशिक्षा है, गरीबी है, पिछड़ापन है। ऐसी स्थिति में प्रदूषण को नियंत्रित रखना अति आवश्यक है। गांवों को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए निरन्तर प्रयास की आवश्यकता होगी, जिससे ग्रामीण परिवेश स्वच्छ, खुले तथा निर्मल वातावरण से ओत-प्रोत बना रह सके।

13/362, सेक्टर-13
इन्दिरा नगर,
लखनऊ (उ. प्र.)

हरियाली

भानुप्रताप सिंह

हरी वनस्पतियां है रक्षक
बना आदमी इनका भक्षक
कैसा आया समय न जाने
हरियाली को इंसान न पहचाने।
काट रहा वो धीरे-धीरे
अपने ही है पैर
दर्द उसे होता है फिर भी
कह रहा नहीं कहीं है दर्द।
वो नादन अभी है समझे न
कहना भी न माने किसी का
अपनी स्वार्थ पूर्ति की खातिर
अपने ही मन की ठाने।

समझ जरा मानव तू अब भी
बीता नहीं समय है
वन ही सजीवों के जीवन है
वन ही है शरण स्थली।
बिन वनों के बन जाएगी
धरा ये मरुस्थली
आओ पेड़ लगाए फिर से
पृथ्वी को हरा-भरा बनाए।
बचे-खुचे वनों की रक्षा का
एक नया अभियान चलाए
खोई हुई हरियाली को
फिर से वापस लाए।।

ग्राम व पोस्ट—कालाकाँकर
जिला-प्रतापगढ़
पिन-कोड-229408 (उ. प्र.)

वन संरक्षण : क्यों और कैसे?

श्याम मनोहर व्यास

वन पर्यावरण के प्रमुख अंग है। पर्यावरण को शुद्ध रखने में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। हमारी संस्कृति ही अरण्य प्रधान संस्कृति है। वन वर्षा लाने में सहायक होते हैं, मिट्टी (मृदा) के कटाव को रोकते हैं तथा बाढ़ से गांव व भूमि की रक्षा करते हैं। कृषि विशेषज्ञों के अनुसार भूमि 1/3 भाग वनों से आच्छादित होना चाहिए, पर आज स्थिति विपरीत है।

वनों का सदा ही से मानव जीवन में महत्व रहा है। मानव अपनी आधारभूत आवश्यकताओं यथा भोजन, कपड़ा और आवास के लिए वनों पर ही पूर्णतया निर्भर रहा है।

वनों से हमें उपयोगी तथा प्रतिदिन व्यवहार की अनेकानेक वस्तुएं प्राप्त होती हैं। जिनमें इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी, लकड़ी का कोयला, प्लाइवुड, बांस, बेंत, लुगदी, सेल्यूलोज, अनेक खाद्य फल, फूल व पत्तियों, पशुओं के लिए चारा, गोंद, रबर, तारपीन का तेल, कत्था, सुपारी, वनस्पतिक रंजक पदार्थ और रेशेदार पदार्थ आदि हैं।

रेल डिब्बों, स्लीपरों, फर्नीचर, पेटियां, घरेलू सामान तथा अन्य इंजीनियरिंग सामान भी वनों से प्राप्त लकड़ी से ही बनाए जाते हैं। वनों से प्राप्त लकड़ी तथा अन्य वस्तुओं से संसार मे अनेक उद्योग चल रहे हैं।

वनों का महत्व प्राकृतिक सम्पदा के रूप में तो है ही इसके अतिरिक्त भी इनकी उपयोगिता प्राकृतिक सन्तुलन को बनाए रखने में भी है। वन कार्बन डाइआक्साइड तथा सल्फर डाइआक्साइड इत्यादि हानिकारक गैसों का वायुमंडल से अवशोषण कर पर्यावरण को स्वस्थ बनाए रखते हैं। वृक्ष वायुमंडलीय आर्द्रता को अवक्षेपित करने में कारण बन कर वर्षा होने में सहायक होते हैं। वन ग्रीष्म ऋतु में तापमान को घटाते हैं तथा शीत ऋतु में तापमान में वृद्धि करते हैं।

वन गए कहां?

वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई ने ही वनों का विनाश किया है। कृषि विस्तार का जनसख्या वृद्धि से सीधा सम्बन्ध है। अनुमानित ईसा से 8000 वर्ष पूर्व विश्व की जनसंख्या मात्र 50 लाख थीं। आज वह बढ़कर साढ़े चार अरब हो गई है। इस सदी के अंत तक वह 6 अरब के लगभग पहुंच जाएगी। खाद्य और कृषि संगठन ने दुनिया के वनों के विनाश से चिन्चित होकर सन् 1985 को अन्तर्राष्ट्रीय वन वर्ष घोषित किया था। विश्व खाद्य संगठन के अनुसार पूरे विश्व में एक प्रतिशत की दर से वह क्षेत्र घटता जा रहा है।

वनों का सबसे अधिक विनाश उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में ही रहा है। वहां प्रतिवर्ष 10 लाख हैक्टेयर वन समाप्त हो रहे हैं। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार भारत में 22.7 प्रतिशत वन क्षेत्र हैं। अब उपग्रहीय चित्रों के आधार पर वन क्षेत्र लगभग 14.10 प्रतिशत बताया जाता है। मध्यहिमालय क्षेत्र में भी 60 प्रतिशत की जगह 31 प्रतिशत ही वन क्षेत्र रह गया है।

घने वन तो काफी कम रह गए है। अधिकतर छितरे हुए वनों के क्षेत्र हैं। हरियाली भी ऐसी ही है जैसे मनुष्य के शरीर पर कोढ़ के दाग हों।

औद्योगिक क्रांति के कारण प्राकृतिक वनों का कटाव नाइजीरिया में 74 प्रतिशत, ब्राजील में 40 प्रतिशत, फिलिपाइन्स मे 50 प्रतिशत तथा भारत में 38 प्रतिशत व अमेरिका में 45 प्रतिशत रहा है।

फर्नीचर के लिए सागवान, शीशम, देवदार व चन्दन आदि महंगे पेड़ों को भी क्रूरता से काटा जाता रहा है। सन् 1990 में औद्योगिक लकड़ी की मांग 4,51,80,000 घनमीटर थी। सन् 2000 तक यह 6,44,50,000 घन मीटर हो जाएगी। कागज और लुगदी की मांग 31 लाख 46 हजार घन मीटर है कोई 1,000 ग्राहक संख्या वाले 16 पृष्ठों के अखबार के लिए बांस के तीन और सफेदे (यूकिलप्टस) के 2 पेड़ काटकर कागज की व्यवस्था की जाती है। लेखन, मुद्रण, परिवेष्ठान तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए भारत को 12 लाख टन कागज की जरूरत पड़ती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रतिवर्ष कितने हजार पेड़ों को काटना पड़ता है।

वृक्ष काटने से भूमि की उपजाऊ ऊपरी परत नष्ट हो जाती है और मानसून के समय भू-कटाव होता है। कुछ वर्ष पूर्व यूनेस्को कूरियर में एक विज्ञापन छपा था—एक बौना आदमी एक

विशाल वृक्ष को बगल में दबा कर भाग रहा है। उससे किसी ने पूछाः क्यों भाग रहे हो?

उसने उत्तर दिया—"इस पेड़ के लिए सुरक्षित स्थान खोजने।" उससे दुबारा प्रश्न किया गया—"तुम्हें भय किसका है?"

उसने बिना पीछे देखे हुए चिल्ला कर कहा—"सीमेन्ट की सड़क मेरा पीछा कर रही है।"

विश्व में वनों का सर्वाधिक विनाश सड़कों के विस्तार के कारण हुआ है।

उष्ण कटिबंधीय देशों में 1.20 अरब लोग रहते हैं और इस भू-भाग में ही अधिक वन हैं तथा वन भी अधिक यहां ही नष्ट हो रहे हैं। उष्ण कटिबंधीय वृक्षों के काटे जाने पर उनके पीछे ऐसी बंजर भूमि के अलावा और कुछ नहीं छूटता जिसमें सैकड़ों साल तक कोई पैदावार नहीं की जा सकती। वन भूमि के क्षेत्र को जब साफ किया जाता है तब वन उस जीवनक्षम तत्व से वंचित होता है जिसे पूरा करने में उपजाऊ मिट्टी असमर्थ रहती है।

वृक्षों की रक्षा

पर्यावरण संरक्षण के लिए पेड़ों की रक्षा आवश्यक है। पेड़ों से ही हमें प्राणवायु आक्सीजन मिलती है। एक नीम के पेड़ से हमें उसके जीवन काल में 2 लाख रुपये मूल्य की केवल आक्सीजन ही मिलती है। अन्य प्राप्त सामग्री का मूल्य जोड़ने पर हमें एक नीम के पेड़ से 15 लाख रुपये का लाभ होता है, वनों से जहां लकड़ी, रबड़, कागज, आक्सीजन मिलती है वहां पेड़-पौधे ध्वनि अवशोषक भी है।

एक कवि ने कहा हैः—

जंगल के हैं क्या उपकार,
पानी, मिट्टी और बयार।
पानी, मिट्टी और बयार
ये है जीवन के आधार।।

निरन्तर गूंजने वाले कोलाहल को वृक्ष अपने में अवशोषित करके शांत वातावरण का निर्माण करते हैं। इससे ध्वनि प्रदूषण जैसी समस्या काफी हद तक मिट जाती है। वनों से भूमि का कटाव कम होता है। वायुमण्डल में आर्द्रता और नमी बनी रहती है। औद्योगिक कारखानों से निकलने वाली जहरीली गैसों के प्रभाव को भी पेड़-पौधों द्वारा कम किया जाता है। वनों को बचाने के लिए आवश्यक है कि फर्नीचर के लिए लकड़ी की जगह लोहा, प्लास्टिक, अल्यूमिनियम आदि काम में लिए जाएं।

वृक्षारोपण कैसे करें?

वन संपदा को बचाने के लिए वृक्षारोपण आवश्यक है। भारत के सामने 17 करोड़ 50 लाख हैक्टेयर बंजड़ भूमि को उपयोगी बनाने का एक जटिल प्रश्न सामने है। इसके लिए एक राष्ट्रीय योजना भी बनाई गई है।

केरल में 'इद्दूकी' वन क्षेत्र में पन बिजली परियोजना का विस्तार पर्यावरण संरक्षण के अध्ययन के पश्चात् रोक दिया गया। सरकार का यह कार्य सराहनीय है। वन महोत्सव मना कर जुलाई माह में वर्षा होने पर वृक्ष लगाने का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाए। साथ ही पेड़ों की रक्षा के भी समुचित उपाय किए जाए।

वृक्षों की वृद्धि राष्ट्र की वृद्धि है। नीम व पीपल के पेड़ों में वायु को शुद्धिकरण करने की अधिक क्षमता है। इसलिए धार्मिक दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है। पहाड़ों पर अखरोट, बबूल, नीमज, आम आदि के पेड़ लगाये जाने चाहिए। मैदानी प्रदेशों में आम, नीम, पीपल, वट, बादाम, शहतूत, इमली, खजूर, बेर, आंवला, बबूल एवं चंदन आदि का पेड़ लगाना उपयुक्त है। समुद्री तट पर नारियल के पेड़ तथा चारागाह भूमि में छोटे-छोटे पौधे व घास उगानी चाहिए। वृक्ष लगाते समय निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

- जगह चुनकर गर्मियों में गड्ढे खोदना। यह गड्ढे डेढ़ फीट चौड़े और 3 फीट गहरे होने चाहिए।
- वर्षा शुरू होने से पहले इन गड्ढों को 25 किलोग्राम प्रति गड्ढे के हिसाब से मिट्टी में खाद मिलाकर भर दें। आम के पेड़ के लिए 40 किलोग्राम अच्छे कम्पोस्ट की खाद काम में ले।
- पेड़ पानी आसानी से मिल सके, इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। पानी देने के दो दिन बाद थावलों में गुड़ाई करना भी आवश्यक है।
- पौधों की रक्षा के लिए गड्ढे के चारों ओर टी गार्ड या बाड़ लगाना आवश्यक है।
- वृक्षों को पानी पूरी तरह से पिलाया जाए। जब तक ऊपर की मिट्टी सूख न जाए दुबारा पानी नहीं पिलाया जाए।

'उगता हुआ वृक्ष' प्रगतिशील राष्ट्र का प्रतीक है, 'वन ही हमारी समृद्धि है।' इस मूल मंत्र को हमें हृदयंगम करना होगा। वन संरक्षण से ही पर्यावरण संरक्षण संभव है।

प्रधानाचार्य,
15, पंचवटी, उदयपुर (राज.)

भारत में वन संसाधन आवश्यकता एवं विकास

डा. गजेन्द्र पाल सिंह

किसी भी देश या अर्थव्यवस्था के विकास में वनों की बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका पाई जाती है। वन हमारी सभ्यता, इतिहास व प्रगति के प्रतीक हैं। वनों से केवल जलाने के लिए लकड़ी ही प्राप्त नहीं होती है, बल्कि उद्योगों के लिए चारा व सरकार को पर्याप्त मात्रा में राजस्व की प्राप्ति भी होती है। यही नहीं वन रोजगार के सृजन करने, जलवायु को उचित बनाए रखने, मिट्टी के कटाव व रेगिस्तान को बढ़ने से रोकने, प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ाने व पर्यावरण को शुद्ध करने में बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

भारत में वनों का क्षेत्र 747 लाख हैक्टेयर है, जो देश के कुल क्षेत्रफल का 22.7 प्रतिशत है। भारत का सम्पूर्ण वन क्षेत्र विश्व के वन क्षेत्र का 1.7 प्रतिशत है। इसमें से 163 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र संरक्षित व शेष 137 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र अवर्गीकृत प्रबन्ध के अन्तर्गत है। देश के कुल वन क्षेत्र का 94 प्रतिशत भाग सरकार के स्वामित्व के अन्तर्गत और शेष 6 प्रतिशत भाग निजी स्वामित्व व पंचायतों के अन्तर्गत है। देश में वन क्षेत्र का वितरण काफी असमान है। मध्य प्रदेश में सबसे अधिक वन क्षेत्र हैं, जबकि उत्तरी भारत के मैदानी भागों में वनों का सर्वथा अभाव है। प्रदेशों के क्षेत्रफल के हिसाब से वन क्षेत्रों का अनुपात इस प्रकार है—पंजाब, व हरियाणा 2 प्रतिशत, राजस्थान 4 प्रतिशत, त्रिपुरा 5 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश 13 प्रतिशत, बिहार 17 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश 48 प्रतिशत, जम्मू-कश्मीर 61 प्रतिशत व अरुणाचल प्रदेश 79 प्रतिशत। भारत में वनों का क्षेत्रफल अन्य राष्ट्रों की तुलना में बहुत कम है, भारत में 22.7 प्रतिशत कुल वन क्षेत्र हैं, जबकि पश्चिमी जर्मनी में 28 प्रतिशत, अमेरिका में 33 प्रतिशत, रूस में 34 प्रतिशत, जापान में 62 प्रतिशत, फिनलैण्ड में 71 प्रतिशत व थाइलैण्ड में 77 प्रतिशत भू-भाग पर वन स्थित हैं।

भारत को प्रकृति द्वारा प्राकृतिक वनस्पति के रूप में बहुमूल्य उपहार प्राप्त है, पर मानव ने इसके महत्व को पूरी तरह से नहीं समझा। देश में विदेशी शासन होने के कारण वनों के विकास, संरक्षण व कुशल प्रबन्ध की दिशा में उल्लेखनीय सरकारी प्रयास या अनुसन्धान कार्य नहीं किया गया। परिणामस्वरूप वन अपने विकास व वृद्धि के लिए मुख्य रूप से प्रकृति पर ही निर्भर रहे हैं। दूसरी तरफ जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण ईंधन व रेलमार्गों के विकास के लिए लकड़ियों की मांग बढ़ने, खेती के लिए अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने की आवश्यकता व समय-समय पर बाढ़ों के प्रकोप से वनों का क्रूरता के साथ विनाश के फलस्वरूप देश में वनों का वास्तविक क्षेत्रफल काफी सिकुड़ता जा रहा है।

उगता हुआ वृक्ष प्रगतिशील राष्ट्र का प्रतीक है। वन राष्ट्रीय सम्पति है तथा सभ्यता के विकास के लिए इनकी नितान्त आवश्यकता है। मानव अपनी सुख-सुविधाओं का विस्तार, अपने अस्तित्व व अपनी आकांक्षाओं व इच्छाओं की पूर्ति में वनों का अधिकाधिक उपयोग करता जा रहा है, ऐसी परिस्थिति में वनों का क्षेत्रफल निरन्तर कम होता जा रहा है जिससे प्राकृतिक सन्तुलन अव्यवस्थित होने लगा है। प्राकृतिक सन्तुलन अव्यवस्थित होने के कारण हमारा पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है, जो भविष्य में मानव सन्तति के स्वस्थ विकास को बुरी तरह से प्रभावित करेगा। यही नहीं वन यदि पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं तो तात्कालिक प्रभाव के अन्तर्गत जल के व्यर्थ बहाव, मिट्टी के कटाव व भावी पीढ़ी के लिए आवश्यक वन उत्पादों की कमी के रूप में अनेक कुप्रभाव सामने आ जाएंगे। इन कुप्रभावों के साथ ही साथ जल स्रोतों का अभाव, वन्य जीवों व वनस्पतियों का अभाव व भूस्खलन जैसे दीर्घकालिक कुप्रभावों का कुचक्र भी गतिशील होगा जिससे हमारे प्राकृतिक संसाधनों का आधार अत्यन्त ही संकुचित हो जाएगा जिसकी अन्तिम परिणति मानव का संहार व विनाश होगा।

वनों का विकास व सरकारी प्रयत्न

स्वतंत्रता के बाद वनों के विकास व संरक्षण के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में सतत् प्रयास किया गया है। वनों के विकास की दिशा में 1979 से विश्व बैंक की सहायता से

सामाजिक वानिकी योजना का शुभारम्भ किया गया है, जिसका प्रभावी क्रियान्वयन वनों के विकास व संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर रहा है। गत योजनाओं में वनों के विकास के लिए किए गए व्यय व कुल योजना व्ययों का प्रतिशत इस प्रकार है—प्रथम योजना 9 करोड़ रुपये, कुल योजना व्यय का 0.43 प्रतिशत, द्वितीय योजना 21 करोड़ रुपये, कुल योजना व्यय का 0.46 प्रतिशत, तृतीय योजना 46 करोड़ रुपये, कुल योजना व्यय का 0.54 प्रतिशत, चौथी योजना 89 करोड़ रुपये कुल योजना व्यय का 0.56 प्रतिशत, पांचवी योजना 221 करोड़ रुपये, कुल योजना व्यय का 0.59 प्रतिशत, छठी योजना 693 करोड़ रुपये, कुल योजना व्यय का 0.67 प्रतिशत, सातवीं योजना में प्रस्तावित व्यय 1959 करोड़ रुपये का था जो कुल योजना व्यय 1.03 प्रतिशत है। पर सातवीं योजना 1985-90 के मध्य वनों के विकास पर लगभग 1200 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है। आठवीं योजना में वन विकास व वन्य प्राणियों के विकास के लिए 3800 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। योजनाकाल में वृक्षारोपण कार्यक्रम, वनों के संरक्षण व वन क्षेत्र के सन्तुलित विस्तार पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था में वनों के विकास में 1979 से विश्व बैंक की सहायता से सामाजिक वानिकी योजना का शुभारम्भ किया गया। इस योजना में सड़क, रेल पटरियों, नहरों के किनारे, ग्राम समाज की खाली पड़ी भूमि, तालाबों, के आस-पास व विद्यालयों के परिसर में वृक्ष लगाने के कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता के आधार पर प्रारम्भ किया गया है।

वन विकास के लिए विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत अनेक कार्यक्रम संचालित किए गए हैं, जैसे वृक्षारोपण, शीघ्र तैयार होने वाले वृक्षों को आरोपित करने के लिए शत-प्रतिशत केन्द्रीय सहायता, वृक्षारोपण व बागवानी हेतु उदार शर्तों पर कम ब्याज की दर से ऋण, आधुनिकी तकनीकी का विकास, वन यातायात का विकास तथा वन कर्मचारियों व अधिकारियों का प्रशिक्षित करना आदि। इस प्रकार यह स्पष्ट हो रहा है कि वनों के विकास की दिशा में सरकार सतत् प्रयत्नशील है। पर देश की आवश्यकता को देखते हुए यह प्रयास पर्याप्त नहीं है। वनों का विदोहन वनों के विकास की तुलना में अधिक तीव्र गति से हो रहा है, जिससे भविष्य में वनों के क्षेत्रफल में और कमी होने की प्रबल सम्भावना है। देश में वनों से प्रतिवर्ष 100 लाख क्यूबिक मीटर औद्योगिक लकड़ी, 150 लाख क्यूबिक मीटर ईंधन लकड़ी व 450 करोड़ रुपये सरकार को प्रतिवर्ष रायल्टी प्राप्त हो रही है। देश में प्रति व्यक्ति वनों का क्षेत्रफल 0.11 हैक्टेयर है, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर 1.08 हैक्टेयर है। अतः देश में वनों के क्षेत्रफल में वृद्धि के लिए कुछ विशेष अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है।

वन विकास सम्बन्धी कार्य श्रम प्रधान है। एक अनुमान के अनुसार वन में कार्य पर लगाए गए प्रत्येक एक व्यक्ति के पीछे और चार व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है। इस प्रकार वन विकास के कार्यक्रम में रोजगार सृजन की अधिकाधिक सम्भावनाएं हैं।

यद्यपि हमारी सरकार वन के विकास व वन सम्पदा के संरक्षण के प्रति विशेष रूप से प्रयत्नशील है,पर परिणाम बहुत उत्साहवर्धक नहीं है। वनों के विकास की दिशा में वर्तमान उपलब्ध वनों को विशेष संरक्षण दिए जाने की आवश्यकता है। देश में गत 35 वर्षों में एक करोड़ हैक्टेयर भूमि से वनों का सफाया किया जा चुका है, इस प्रकार वृक्षों की कटाई का वर्तमान सिलसिला यदि जारी रहा तो भविष्य में शीघ्र ही वातावरण में प्राणवायु की कमी हो जाएगी। अतः वनों के विकास व संरक्षण हेतु सरकार, समाज सेवी संस्थाओं व जनसाधारण के सामूहिक प्रयास द्वारा वन संरक्षण नीति के तहत जो कानून बनाए गए हैं उनका कड़ाई से पालन व क्रियान्वयन करके,प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण शुद्ध पर्यावरण व समृद्ध भारत,अपनी भावी पीढ़ी को सुपुर्द करने में हम सफल हो सकते हैं।

अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
कुंवर सिंह महाविद्यालय
बलिया, उत्तर प्रदेश

प्राकृतिक संसाधनों को खत्म करता हुआ 'मशीनी मानव'

चन्द्रकांत चन्द्रेश

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आज से लगभग 4.5 अरब वर्ष पूर्व हमारी धरती का जन्म हुआ था और इस पर आदमी का विकास अभी दो लाख वर्षों ही में संभव हो सकता है। तीन अरब वर्षों तक जीवमण्डल के विकास ने पृथ्वी को मनुष्य जन्म के लिए तैयार किया। इंसान इसके सुन्दर और खुले वातावरण में पूरी आजादी के साथ घूमता-फिरता रहा। पर उसकी विकासशील बुद्धि ने पल्टा खाया और पिछले तीन सौ साल से वह विज्ञान-तकनीकी सभ्यता द्वारा अपने वातावरण पर ही हमला करता आ रहा है। किन्तु 20वीं शताब्दी में विशेषकर पिछले चार दशकों में खनिज ऊर्जा पर आधारित औद्योगीकरण ने हमारे पर्यावरण और समाज को थोड़े ही समय में इतना प्रदूषित और प्रभावित कर दिया है कि मानव जाति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

जैविक विकास की परम्परा इकोतंत्र (इकोसिस्टम) के सिद्धांत पर आधारित है। वनस्पतियां सूर्य की ऊर्जा, पृथ्वी और वायु के तत्वों से अपना पालन-पोषण करती हैं। शेष प्राणी उसी ऊर्जा और तत्वों को ग्रहण करते हैं। इस तरह एक-दूसरे पर आधारित और जैविक और अजैविक घटकों में सन्तुलित आदान-प्रदान बने रहने से सारा सम्बद्ध जीव-जगत इकोतंत्र के साधनों द्वारा चलायमान रहता है। आज का मानव भौतिक, जैविक और सामाजिक आधारों तथा कड़ियों को शीघ्रातिशीघ्र नष्ट कर रहा है।

प्रकृति ही आदमी का पर्यावरण बनाती है और यही उसके लिए जरूरी संसाधन जुटाती है। आज का मशीनी इंसान अपनी ना-समझी या स्वार्थ के कारण पर्यावरणिक संसाधनों को नष्ट करता जा रहा है। पिछले लगभग 30 वर्षों में वैज्ञानिकों ने यह समझने और समझाने की बहुत कोशिश की है कि समय और स्थान विशेष की सीमाओं में हमारे संसाधन असीमित नहीं हैं। अति उपभोगी सभ्यता में औद्योगिक उत्पादन प्राकृतिक संसाधनों और ऊर्जा स्रोत भण्डारों पर आधारित है, जो दोनों निश्चय ही तेजी से खत्म होते जा रहे हैं। इस प्रक्रिया में संसाधनों द्वारा ही निर्मित जीवपोशी तंत्र संकीर्ण, दूषित तथा विषाक्त होता जा रहा है। आज विज्ञान ने हमें दो विकल्पों के चौराहे पर खड़ा कर दिया है। एक तो विवेक, मितव्ययी और नैतिकता का लम्बा रास्ता, दूसरा भोग-विलास का, जिस पर पर्यावरण तथा मानव जाति का शीघ्र ही सर्वनाश निश्चित है। इससे बचने का एक ही तरीका है कि मानव अपने नैतिक कर्तव्य की पहचान कर प्रकृति को समुचित सुरक्षा प्रदान करे और साथ ही उसके सीमित संसाधनों को नष्ट होने से बचाए। इसके लिए यह बहुत जरूरी है कि वह प्रकृति को भली-भांति समझे और अपने भौतिक विकास के लिए प्रकृति से ताल-मेल बैठाए।

संसाधनों का प्रबंध और संरक्षण

जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति जिन स्रोतों से होती है, उन्हें संसाधन कहा जाता है। वाट ने संसाधन की परिभाषा इन शब्दों में की है "संसाधन किसी जीव, समष्टि या पारिस्थितिक तंत्र की वह कोई भी आवश्यकता है जिसकी उपयुक्त सीमा तक में वृद्धि सम्भव होती है।" वाट ने इन अर्थों में समय को भी बहुमूल्य संसाधन कहा है क्योंकि जीवों की सभी क्रियाएं समय के अन्तराल में ही सम्भव होती हैं। मनुष्य के संदर्भ में समय को इसीलिए भी संसाधन माना जा सकता है कि मनुष्य जाति को नष्ट होने से बचाने के उपायों में समय का दुरुपयोग नहीं किया जा सकता। स्थान तो मुख्य संसाधन है ही क्योंकि मनुष्य के भोग-विलास व जीवन की सभी सामग्री पृथ्वी की सीमित परिधि में ही प्राप्त है और मनुष्य के निवास के लिए भी कुछ न्यूनतम स्थान की आवश्यकता है। प्राकृतिक संसाधनों को दो भागों में बांटा जा सकता है: जैविक और भौतिक अथवा नवीनीकरणीय और सीमित (नवीनीकरण के अयोग्य) या संचित (नान-रिन्युएबुल)। पौधे प्रकृति के सरलतम तत्वों का उपयोग करके जटिल तत्वों का निर्माण करते हैं, जिन पर अन्य जीवों की वृद्धि निर्भर होती है। जीव प्रजनन द्वारा वृद्धि करते रहते हैं और वहीं सरल तत्व बार-बार परिसंचरण द्वारा जीवों की वृद्धि के लिए उपलब्ध रहते हैं। इस प्रकार जैविक संसाधन (पौधे तथा अन्य प्राणी) नवीनीकरणीय भी हैं। इसके विपरीत प्रकृति के सभी भौतिक संसाधन (मृदा, जल, वायु) सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं और उनमें वृद्धि सम्भव नहीं है।

पृथ्वी का एक तिहाई से अधिक हिस्सा जंगलों से ढका हुआ है। प्रकाश संश्लेषण द्वारा जंगल संसार की अनेक प्रमुख आवश्यकताओं, जैसे ईंधन, इमारती लकड़ी, कागज के लिए लुग्दी, संश्लेषित धागों के लिए कच्चा माल, आदि की सप्लाई करते हैं। इसके अलावा ताप नियंत्रण क्षमता, संवहन और परावर्तन की प्रवृत्ति, जल-चक्र पर प्रभाव द्वारा भी ये बहुत महत्वपूर्ण हैं। जंगलों द्वारा सारे संसार के फोटोसिन्थेसिस का लगभग आधा कार्य पूरा हो जिससे कार्बनडाई आक्साइड और आक्सीजन के संतुलन में मदद मिलती है। जल के बहाव को नियंत्रित करके बाढ़ रोकने में इनका विशेष योगदान रहता है। जंगलों में अनेक पौधे और जन्तु भी पाए जाते हैं जिनका अलग से महत्व होता है। जंगलों से पानी और हवा द्वारा मृदा का अपरदन भी रुकता है। इन सबके अतिरिक्त मनुष्य के लिए मनोरंजन, सौन्दर्य बोध और मनोविज्ञान की दृष्टि से भी वनों का विशेष महत्व है। वायु प्रदूषण कम करने में जंगलों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। आदिकाल से मनुष्य जंगलों में रहा है और वनों पर ही अपने जीवन के लिए निर्भर रहता था। सभ्यता के विकास के बाद भी इंसान जंगलों के निर्जन एकान्त में चिन्तन-मनन के लिए शांति खोजता रहता है।

लेकिन आज स्थिति तेजी से बदल रही है। खेती के लिए जंगलों को नष्ट करके भूमि साफ की जाती है और इसका परिणाम बाढ़ और भूमि अपरदन के रूप में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। नगरों, जलाशयों और आवागमन के रास्तों के बनाने के लिए जंगलों को तेजी से काटा जा रहा है। जंगलों को नष्ट करके उनके स्थान पर नए उद्योग लगाए जा रहे हैं। उद्योगों से प्रदूषण बढ़ता है, अनेक विषैले रसायनों, लकड़ी की बारूद, उद्योगों की गैसों, धुएं आदि से वातावरण जहरीला होता जा रहा है। इन समस्याओं को मनुष्य ने नया मोड़ दिया है, केवल कुछ मुख्य और उपयोगी जाति के वृक्षों (जैसे यूकिलिप्टस, विलायती बबूल और फलों के पेड़) के जंगल लगाकर। कम उम्र के पेड़ों में वृद्धि दर अधिक होती है, इसलिए मनुष्य जल्दी-जल्दी वनों को काटकर फिर से नए पेड़ लगाता रहता है। इसके परिणामस्वरूप, मृदा में हुई पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए उर्वरकों का भी प्रयोग करना होता है और सिंचाई की भी आवश्यकता होती है। प्राकृतिक जंगलों में पत्तियों, डालों आदि मृत अवशेषों के अपघटन से पोषण के लिए आवश्यक तत्वों की सप्लाई बनी रहती है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति और जमीन पर शाकीय पौधों की वृद्धि से मृदा में जनधारण क्षमता अधिक रहती है और अपरदन नहीं होता। इस प्रकार एक ओर मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं के लिए अधिक जंगलों की आवश्यकता है तो दूसरी ओर वनों के संरक्षण की भी जरूरत है। यथासंभव वनों को नष्ट न करके कम से कम पेड़ों से अधिक से अधिक सामग्री प्राप्त की जाए। वनों से प्राप्त सामग्री का फिर से उपयोग किया जाए। तकनीक का विकास भी इस दृष्टि से किया जाए कि पर्यावरण की प्रदूषण सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न न हों।

अनुकूल पर्यावरण सुखी जीवन के लिए आवश्यक है। अपनी परम्परा के अनुसार जहां हम निवास करते हैं उसे धरती माता मानते हैं। मनुष्य की आवश्यकताओं और पर्यावरण के संरक्षण में कोई विरोध नहीं है। भारत अभी औद्योगीकरण की प्रारम्भिक स्थिति में है तथा पर्यावरण के संरक्षण और विकास की ओर ध्यान देने का यह सर्वाधिक उपयुक्त अवसर है। मुख्य बात यह है कि हमारे देश में निरन्तर जनसंख्या में वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों के अनियन्त्रित दोहन के कारण पर्यावरण के सन्तुलन बिगड़ने के कारण अनेक समस्याएं उठ खड़ी हो गई हैं, जो अब वैज्ञानिकों के लिए बड़ी चुनौती बन गई है।

शेरपुर, नरायनपुर, मिर्जापुर-231305

"कुरुक्षेत्र" मंगाने का पता
व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस
नई दिल्ली-110001

वृक्षारोपण की व्यक्तिक हितग्राही योजना आदिवासियों के लिए हितकारी

अशोक कुमार यादव

आदिवासियों में वन संरक्षण एवं वृक्षारोपण कार्यों के प्रति लगाव पैदा करने तथा उन्हें वृक्षारोपण के माध्यम से स्थाई रोजगार मुहैया कराने के उद्देश्य से शुरू की गई वृक्षारोपण की 'व्यक्तिक हितग्राही योजना' के परिणाम आने लगे हैं। आदिवासियों को यह योजना लाभकारी लगने लगी है व उनमें वृक्षारोपण कार्यों के प्रति रुझान भी उत्पन्न हुआ है। वे इस योजना में आवंटित भूमि को अपनी भूमि मानकर उसमें खड़े पेड़-पौधों की रक्षा कर रहे हैं।

यह योजना खासकर राजस्थान के उदयपुर-प्रतापगढ़ तथा बांसवाड़ा वन मण्डलों के आदिवासियों के लिए ही वर्ष 1988-89 से शुरू कराई गई है। योजना की शुरुआत के लिए प्रयोग के तौर पर इन क्षेत्रों में भूमिहीन एवं गरीबी की सीमा रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले 50 आदिवासी परिवारों का चयन किया गया है। विश्व खाद्य कार्यक्रम के अन्तर्गत वन विभाग द्वारा संचालित की जा रही इस योजना में चयनित प्रत्येक आदिवासियों को प्रति वर्ष एक-एक हैक्टेयर वन भूमि का आबंटन कर उनसे इस जमीन में पौधे लगवाए जा रहे हैं।

बांसवाड़ा जिले में पीपलखूंट पंचायत समिति क्षेत्र में जेतलिया तथा पानेड़िया गांवों के 15 आदिवासी परिवारों ने 'व्यक्तिक हितग्राही योजना' को पूर्णतया अंगीकार कर लिया है। वर्ष 1988-89 से लेकर वर्ष 1990-91 तक के तीन वर्षों में इन आदिवासी परिवारों में से प्रत्येक ने प्रतिवर्ष आबंटित एक-एक हैक्टेयर भूमि पर बांस, महुआ, आम, शीशम, नीम, खेर आदि के प्रति वर्ष 625-625 पौधे लगाए हैं और वे इनकी बड़े चाव से देख भाल कर रहे हैं। इस 6 वर्षीय योजना में वन विभाग द्वारा प्रतिवर्ष एक हैक्टेयर के हिसाब से कुल 6 हैक्टेयर भूमि का आबंटन किया जाएगा व प्रत्येक आदिवासी परिवार 6 वर्षों में आबंटित भूमि पर कुल मिलाकर तीन हजार 725 पौधे लगाएगा व उन्हें बड़ा करेगा।

इस योजना में उल्लेखनीय बात यह है कि विश्व खाद्य कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्तिक हितग्राही योजना परिवार को प्रतिमाह चार सौ-चार सौ रुपये की मजदूरी पेड़-पौधों की फेंसिंग, निड़ाई-गुड़ाई तथा पौधों में पानी डालने हेतु उपलब्ध कराई जा रही है। आबंटित वन भूमि से उत्पन्न हो रहे घास आदि को भी ये परिवार ही उपयोग में ला रहे हैं। इसके अलावा योजना अवधि की समाप्ति पर विकसित प्रत्येक आदिवासी की 6 हैक्टेयर की वृक्षावली से होने वाली आय में से आधा भाग स्वयं आदिवासी किसान को मिलेगा जबकि आय का शेष 50 प्रतिशत भाग वन विभाग का होगा।

वन विभाग ने पानेड़िया गांव में पांच में से चार ऐसे परिवारों को योजना के तहत चयनित किया है जो कि माही बहुद्देशीय परियोजना के निर्माण के कारण विस्थापित हुए थे। इनमें से 28 वर्षीय नागजी को भी इस योजना का लाभ मिला है। नागजी इस बात से खुश है कि उसे पेड़-पौधे लगाने के लिए भूमि का आबंटन हो रहा है व उसके पशुओं के लिए इन वन भूमि से आसानी से चारा मिलने लगा है। इन परिवारों को अपने वृक्षों को पानी पिलाते, देखभाल करते तथा चारा ले जाते देख कर पानेड़िया के अन्य आदिवासी परिवारों में भी वृक्षारोपण की लालसा बढ़ी है। वे भी हितग्राही योजना का लाभ दिलाने के लिए मांग करने लगे हैं।

पीपलखूंट में कार्यरत क्षेत्रीय वन अधिकारी, श्री हड़मतसिंह का कहना है कि वृक्षारोपण की व्यक्तिक हितग्राही योजना से जुड़े आदिवासी परिवारों में वृक्षारोपण के प्रति मोह पैदा हो रहा है। यही नहीं इनको आबंटित की गई भूमि के आसपास खड़े वृक्षों की सुरक्षा भी ये आदिवासी करने लगे हैं। वन विभाग द्वारा इस कार्यक्रम के तहत नियमित निगरानी रखे जाने व आवश्यक तकनीकी जानकारी दिए जाने के कारण आदिवासियों में वृक्षारोपण के प्रति विश्वास पैदा हो रहा है। वन विभाग द्वारा अब योजना के लाभान्वितों प्रत्येक लाभान्वितों से पांच-पांच हजार पौधों की एक-एक पौधशाला तैयार कराई जाएगी ताकि वे अपनी पौधशाला में तैयार हुए पौधे ही आबंटित भूमि में लगा सकें व पौधशाला से अतिरिक्त आय अर्जित कर सकें। इस योजना में लगाए गए पौधों को पानी पिलाने के लिए पानेड़िया व जेतलिया में एक-एक हेण्ड पम्प भी लगवाया जा रहा है।

व्यक्तिक हितग्राही योजना का उद्देश्य आदिवासियों की माली हालत को मजबूत बनाना भी है। इसके लिए वन विभाग

द्वारा योजना के तहत आदिवासियों से आबंटित भूमि में धामण घास, रतनजोत, अरण्डी व सफिल मूसली भी लगवायी जाएगी ताकि वे लघु वन उपज प्राप्त कर आय अर्जित कर सकें।

इसके अलावा पीपलखूंट पंचायत समिति क्षेत्र में आदिवासियों को वन विकास योजनाओं से जोड़ने के लिए वर्ष 1988 में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के तहत बगतोड़ क्षेत्र मे ग्राम्य वन लगवाया गया है जो अब फल-फूल रहा है। हितग्राही योजना की तरह ही इसमें भी 20-20 तथा 30-30 फीट के पौधे हो गए हैं। बगतोड़ में 30 हैक्टेयर क्षेत्र में वृक्षारोपण के लिए ग्राम पंचायत द्वारा भूमि उपलब्ध कराई गई है जिसमें खासतौर से खेर सहित विभिन्न प्रजातियों के 33 हजार पौधे लगवाए गए हैं। इस क्षेत्र से अब आसपास के किसानों को भरपूर घास मिलने लगी है। पूना पठार क्षेत्र में भी 50 हैक्टेयर क्षेत्र का वन खण्ड विकसित किया जा रहा है जिसमें वर्ष 1989 में 55 हजार पौधे लगाए गए हैं।

जिला सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
बांसवाड़ा (राज.) 327001

वन उपजाएं

कलीम अव्वल

पेड़ों पर कुछ रहम दिखाएं
इनकी लाशें यों न बिछाएं।

सकल धरा का जहर सोख कर
प्राण-वायु जग को देते हैं,
पंथी को शीतल छाया दे
दुख सबका हर लेते हैं—

मित्र हैं, इनको लगे लगाएं
कभी न इनको दुख पहुंचाएं!

तन-फल-फूल पत्तियां सबका
कर देते परमार्थ दान ये,
बदले में कुछ नहीं चाहते
ऋषि दधिचि—से महान ये—

हम भी त्याग-भाव अपनाएं
जीवन अपना सफल बनाएं!

वन होंगे तो हर आंगन में
खुशियों की होगी बरसात,
खेतों में झूमेंगी फसलें
अधरों पर होंगे नग्मात—

धरती को फिर स्वर्ग बनाएं
आओ, फिर हम वन उपजाएं!

पर्यवेक्षक
आयकर आयुक्त कार्यालय,
जोधपुर, राजस्थान

वृक्षारोपण

छीतरमल सोनी

देश की सुयोजना में, योगदान दीजिए।
हरे-हरे बिरछा लगाइ, पुन्य कीजिए।
डगर-डगर एक-एक, वृक्ष सब लगावें।
फिर कारे बादरहू, पानी बरसावें।
धानी के खेतों में, पानी भर लीजिए।
जहां-जहां वृक्ष लगें, हरियाली छाएगी।
जन-जन के जीवन में,खुशहाली आएगी।
सरिता और झरनों का, निर्मल जल पीजिए।
पेड़ ही प्रदूषण के, जहर को पचाएं।
हारी-बीमारी से पेड़ ही बचाएं।
वृक्षों से परहित की, शिक्षा सब लीजिए।
पाहन के बदले में, अपने फल देते हैं।
कुछ भी ना बदले में, हमसे कुछ लेते हैं।
इन जैसा दानी मन, अपना कर लीजिए।
भूखों को भोजन और पंथी को छांह मिले।
अनगिनती पंछिन को, निशि दिन विश्राम मिले।
धरती को वृक्षों से, स्वर्ग बना दीजिए।

मुहल्ला गोपीवल्लभ वार्ड नं. 20,
मुरैना नगर (म. प्र.) पिन-476001

पर्यावरण और हम

गदाधर भट्ट

भारतीय संस्कृति का विकास प्रकृति की गोद मे, वन संपदा से संपन्न तपोवनों एवं आश्रमों में हुआ, जहां भविष्यदृष्टा ऋषियों के मंत्रों में प्रतिदिन पर्यावरण की शुद्धि व शान्ति के लिए निरन्तर स्वर गूंजते रहते थे—

ओमद्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवीशान्ति रापशान्ति रोषधयः शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः।

आकाश, पृथ्वी, जल, पौधे एवं जीव ही पर्यावरण का सृजन करते हैं। प्रकृति का यह समग्र रूप ही पर्यावरण के नाम से जाना जाता है। आनुवंशिकी एवं पर्यावरण के परिणाम है जीव-जन्तु। पर्यावरण से हमारे शरीर, मन एवं स्वास्थ्य प्रभावित होते रहते हैं।

भारतीय संस्कृति में शरीर को धर्म का प्रथम साधन माना गया है। "शरीरमाधं खलु धर्मसाधनम्।" आयुर्वेद-विज्ञान में मुनि चरक ने स्वस्थ शरीर के लिए शुद्ध वायु, जल तथा मृदा (मिट्टियों) को पर्यावरण का आवश्यक घटक स्वीकारा है। डार्विन जैसे प्राणी वैज्ञानिकों ने भी पर्यावरण को जैविक विकास का महत्वपूर्ण साधन स्वीकार किया है। प्राचीन काल से हमारे ऋषि-महर्षियों ने अपने शान्ति पाठ के माध्यम से पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने पर विशेष बल दिया है, जिसे आज हमारी विज्ञान-तकनीकी-प्रगति ने भुला दिया है।

पर्यावरण एवं वैज्ञानिक प्रगति

वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों के असंतुलित दोहन से, औद्योगिक प्रगति एवं विस्तार से हमारे लिए शुद्ध जल, शुद्ध वायु एवं शुद्ध मिट्टी का अभाव होता जा रहा है। अतः पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है। जीवन के लिए सुख-साधन देने वाली विज्ञान-प्रौद्योगिकी-उन्नत पर्यावरण को दिन-प्रतिदिन प्रदूषित कर जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही है। इसका परिणाम केवल हम ही नहीं, अपितु वृक्ष, लता, गुल्म, वायु, पानी, जीव-जन्तु सभी भुगत रहे हैं। पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों की अनेक दुर्लभ प्रजातियां विलुप्त हो रही हैं। सघन वन समाप्त होते जा रहे हैं। हम प्रत्येक श्वास के साथ विष पी रहे हैं। विज्ञान के बढ़ते हुए चरण एवं वैज्ञानिक अनुसंधान परोक्ष में प्राणियों के लिए त्रास व पीड़ा में वृद्धि कर रहे हैं। जिनका परवर्ती प्रभाव संसार के लिए अधिक घातक सिद्ध हो सकता है।

जर्मनी के प्रसिद्ध पर्यावरण विशेषज्ञ जीव-शास्त्री प्रो. फ्रेड्रिक वेस्टर का कथन है "जिस प्रकार शारीरिक संरचना में कैंसर की एक गांठ शरीर के असंतुलित वृद्धि के कारण शरीर के विनाश का कारण बनती है, वैसे ही बड़े-बड़े उद्योग (असंतुलित उद्योग) संतुलित विकास के अभाव में पर्यावरण प्रदूषण के कारण बनते हैं।" अतः आज विज्ञान को ऐसी तकनीक के विकास की आवश्यकता है जो प्रकृति के विरुद्ध न होकर सहायक सिद्ध हो। प्रो. फ्रेड्रिक वेस्टर की चेतावनी विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में वैज्ञानिकों के लिए गंभीरता से विचारणीय हैं।

औद्योगीकरण एवं पर्यावरण

औद्योगीकरण एवं पेट्रोल चलित वाहनों में प्राणवायु (आक्सीजन) का अभाव होता जा रहा है। विषैली वायु (कार्बन डाइआक्साइड) की जिस तीव्रता से वृद्धि हो रही है, वह हमारे लिए घातक सिद्ध होगी। यह गैस विश्व में ग्रीन हाउस (दूषित गैस-समूह) का लगभग आधा भाग है। इसका बीस प्रतिशत भाग तो केवल अमेरिका में है। दूषित गैसों से बढ़ती गर्मी एवं ऊर्जा के उपयोग के लिए वैज्ञानिकों को रचनात्मक संसाधन खोजने चाहिए। अन्यथा प्रदूषित पर्यावरण में प्राणी घुट-घुट कर दम तोड़ देंगे।

पर्यावरण विशेषज्ञों की चेतावनी है, इक्कीसवीं शती के प्रारंभ से पूर्व विकसित देशों को बीस प्रतिशत विषैली गैस (कार्बनडाई आक्साइड) की कमी करनी होगी अन्यथा मानव जाति का विनाश निकट है। वायु-प्रदूषण का अन्य प्रभाव तेजाबी वर्षा है, वायु मण्डल में कार्बन आदि की अनावश्यक मात्रा के धनीभूत होने से वर्षा के समय अम्ल बनकर निर्मल जल को तेजाब में परिवर्तित कर देती है। देश के प्रमुख उद्योग नगरों में वर्षा के जल में अम्ल के परीक्षण किए जा चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विश्व पर्यावरण संगठन के एक प्रतिवेदन के

अनुसार-विषैली गैसों से पृथ्वी पर गर्मी 2.7 सेंटीग्रेड की गति से प्रतिवर्ष बढ़ रही है, भविष्य में यह गर्मी इतनी प्रचण्ड होगी कि विश्व सहन करने की स्थिति में न रहेगा। अतः पर्यावरण संरक्षण आज की महती आवश्यकता है।

वायु प्रदूषण एवं वृक्षारोपण

वायु में प्रदूषण रोकने के लिए वनस्पतियों एवं वनों के संरक्षण की ओर ध्यान देना चाहिए वन संपदा से संपन्न यह देश आज निर्धन हो गया है। पर्यावरण विशेषज्ञ मानते हैं, हमारे खुले भू-भाग का एक-तिहाई भाग वनों से आच्छादित होना चाहिए। स्वतंत्रता से पूर्व राजस्थान में 23 प्रतिशत भू भाग में वृक्ष थे। अब छह प्रतिशत मात्र रह गए हैं, सघन वन तो केवल दो प्रतिशत हैं। सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत सघन वृक्षारोपण एवं संरक्षण कार्यक्रम क्रियान्वित करने चाहिए। नगरों में भी सघन वृक्षारोपण की आवश्यकता है। जन-संकुल क्षेत्रों में छतों पर गमलों द्वारा झूलते हुए बगीचे विकसित किए जा सकते हैं। वृक्ष-पौधे वायु प्रदूषण के अवरोधक हैं। ये कार्यक्रम युद्ध स्तर पर क्रियान्वित होने चाहिए।

जल संरक्षण एवं उपाय

'जल को जीवन कहा गया है।' जल के अभाव में प्राणी का जीवित रहना संभव नहीं है। वनों के अभाव में वर्षा का औसत एवं जलस्तर निरन्तर घट रहा है, अनावृष्टि-अकाल की भीषण छाया निरन्तर मंडराती रहती है। जल के बाहरी-भीतरी स्रोत धीरे-धीरे सूखते जा रहे हैं। शुद्ध पेयजल की गंभीर समस्या मुंह बाएं खड़ी है। उपलब्ध शुद्ध पेयजल को गंदगी एवं कूड़े से बचाएं। धार्मिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक, तीर्थस्थलों का, नदी, सरोवरों का संरक्षण करें। प्रदूषित जल एवं अवशिष्ट पदार्थों के निर्गमन की समुचित व्यवस्था करें। जल का अक्षय भण्डार समुद्र इस पृथ्वी के 60 प्रतिशत भाग में है, यह भी तेल, रासायनिक पदार्थ, आणविक परीक्षण, पोत-दुर्घटनाओं से निरन्तर पीड़ित होकर दिन-प्रतिदिन प्रदूषित होता ही जा रहा है। विश्व सामुद्रिक संगठन (आई. एम. ओ.) सामुद्रिक प्रदूषण को रोकने के लिए प्रयत्नशील है।

ध्वनि प्रदूषण एवं हमारा जीवन

ध्वनि प्रदूषण वैज्ञानिक प्रगति की महत्वपूर्ण देन है। कारखानों से निरन्तर ध्वनित कोलाहल, वाहनों का अहर्निश निकलता हुआ (कर्कश) स्वर हमारे ऋषियों के प्रार्थना मंत्र "हम सौ वर्ष तक सुनते रहे" (श्रणुयाम शरदः) शतम् का उपहास कर रहा है। यह ध्वनि प्रदूषण हमें शनैः शनै अशान्त एवं बहरा बना रहा है। ध्वनिमापक यंत्रों के अनुसार वर्तमान में ध्वनि का स्तर विगत दो दशकों की तुलना में पंद्रह गुना बढ़ गया है। ध्वनि स्तर की ऐसी तीव्रता रही तो आगामी वर्षों में मानव जीवन का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा। अतः ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए कारखानों एवं वाहनों में ध्वनि अवरोधक यंत्र (साइलेंसर) लगाए जाए। जन संकुल शहरी क्षेत्रों में वाहनों का आवागमन रोका जाए। अनिवार्य स्थिति में वाहनों में हार्न का उपयोग किया जाए। पथ के दोनों और सघन वृक्ष लगाए जाएं। वृक्ष ध्वनि एवं वायु प्रदूषण को रोकते हैं। रेडियो, टी. वी., टेप, ध्वनि विस्तारक यंत्रों का उपयोग सीमित हो एवं निर्धारित ध्वनि में सुनें।

पर्यावरण संरक्षण की अपरिहार्यता

प्रकृति के असंतुलित दोहन के मूल में प्रकृति पर बढ़ता हुआ मानवीय दबाव है। अतः इस मानवीय दबाव को कम करने के लिए जनसंख्या नियंत्रण आवश्यक है। इससे संबद्ध परिवार कल्याण कार्यक्रम को सफल बनाएं। असीम भौतिक प्रगति एवं सांसारिक भोग कामनाओं ने मनुष्य के मन को अशान्त, अतृप्त एवं दूषित कर दिया है। अतः मन की शांति, तृप्ति एवं निर्मलता के लिए भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करें एवं उनको जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। पर्यावरण शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग बनाएं। विनाश रहित प्रगति का एकमात्र विकल्प पर्यावरण संरक्षण है। वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों की जीवन रक्षा के लिए पर्यावरण संरक्षण की दिशा में हम सक्रिय सुदृढ़ चरण बढ़ाएं।

भट्ट सदन, मंगलपुरा, झालावाड़ (राज.)

*

गरीबी दूर करने में भूमि सुधारों का महत्व

प्रो. सुशील शर्मा
डा. शैलेन्द्र बाजपाई

भारत के आर्थिक ढांचे से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह एक कृषि प्रधान देश है। इसकी एक अन्य विशेषता क्षेत्रीय विविधता भी है। हालांकि प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भारत को समृद्ध कहा जा सकता है लेकिन विकसित देशों की तुलना में यह एक गरीब देश सिद्ध होता है। यहां आर्थिक आयोजना मिश्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों पर आधारित है।

मोटे अनुमान से भी भारत की जनसंख्या इस समय 83 करोड़ से कम नहीं होगी 2.25 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर को देखते हुए इस शताब्दी के अंत तक भारत की आबादी 1 अरब को पार कर जाने की संभावना है। यहां की 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है और इनमें से 40 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे अत्यंत दयनीय स्थिति में जीवन यापन करते हैं। इस स्थिति का कारण लोगों की आय में क्षेत्रीय असमानता का होना है।

1970-80 के दशक में देश में जोतों की संख्या के 7.1 करोड़ से बढ़कर 90 लाख हो जाने और पिछले 20 वर्षों में सीमान्त जोतों की संख्या 50 प्रतिशत से 60 प्रतिशत हो जाने से भी लोगों की स्थिति और बिगड़ी है।

भूमि सुधारों की आवश्यकता

भारतीय अर्थव्यवस्था में दो प्रमुख कारणों से कृषि क्षेत्र का महत्व अधिक है। पहला कारण यह है कि राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा 1977-80 में 34.4 प्रतिशत था। जबकि उद्योग का 25.7 प्रतिशत और सेवा क्षेत्र का हिस्सा 38.9 प्रतिशत था। दूसरा, रोजगार की दृष्टि से देश में श्रम-शक्ति का दो तिहाई से अधिक भाग कृषि तथा इससे संबंधित गतिविधियों में रोजगार पाता है। यहां यह बताना उचित होगा कि देश में जो 2 करोड़ 70 लाख कामगार हैं उनमें से करीब 2 करोड़ 10 लाख ग्रामीण क्षेत्रों के हैं। इसलिए देश के सम्पूर्ण आर्थिक विकास के लिए इस क्षेत्र के ढांचे में बदलाव बेहद जरूरी है। इसमें संदेह नहीं कि इस क्षेत्र की उत्पादकता और विकास में अनेक बाधाएं हैं लेकिन आज भूमि सुधार के क्षेत्र में अधूरे कार्यों पर ध्यान देने की सबसे अधिक आवश्यकता है। राजनीतिक-अर्थशास्त्रियों, योजनाकारों और विचारकों द्वारा इस क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए अधिक ईमानदारी से विचार करने की जरूरत पहले के मुकाबले आज सबसे अधिक महसूस की जा रही है।

भारतीय कृषि की समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया जाए तो ऐसा महसूस होगा कि छोटी-छोटी जोतें आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं होती मगर प्रो. एन. जी रंगा के नेतृत्व में एक अध्ययन दल के निष्कर्ष से कुछ सवाल पैदा होते हैं : "छोटी जोतों की अर्थव्यवस्था को किसानों के ही दृष्टिकोण से उचित ठहराया जाए या जमीन की उत्पादकता के आधार पर इसका औचित्य सिद्ध किया जाए? राष्ट्र के दृष्टिकोण से प्रति किसान उत्पादन का स्तर अधिक महत्वपूर्ण है या प्रति एकड़ उत्पादन? एक छोटा किसान अपनी जोत से अच्छी पैदावार ले सकता है या बड़े आकार की सहकारी या सामुदायिक समिति? राष्ट्रीय हित में क्या अधिक जरूरी है—हर छोटे-बड़े किसान के पास अपनी जमीन हो ताकि वह इस पर कुछ दिन शोषण से मुक्त होकर आजीविका कमाने के लिए कार्य कर सके या यह जरूरी है कि करोड़ों रोजगार शुदा किसान अपनी जमीन को मिलाकर इस पर मशीनों की मदद से या बिना मशीनों के सहकारी खेती करें?"

इस लेख के अंतर्गत स्वतंत्र, स्व-रोजगार वाले छोटे काश्तकारों अथवा यंत्रीकृत सामुहिक खेती में से किसी एक पर अधिक जोर नहीं दिया गया है। इसमें भूमि सुधार के क्षेत्र में हुई प्रगति का जायजा लेते हुए यह पता लगाने का प्रयास किया गया है कि किस सीमा तक काश्तकार को जमीन मिल पाई है।

दरअसल भूमि सुधार के अंतर्गत सिर्फ भूमि का नए सिरे से वितरण ही शामिल नहीं है, बल्कि भूमि प्रबंध संबंधी पहलू, जमीन की पैदावार के कम होने, इसके उपयोग पर नियंत्रण आदि कई बातें इसमें आ जाती हैं। अनुमान है कि देश में 33 करोड़ हैक्टेयर भूमि में से 17.5 करोड़ हैक्टेयर की उत्पादक के कम होने और क्षरण का खतरा पैदा हो गया है।

1951 के बाद तीन दशकों में खेतिहर मजदूरों की संख्या में भारी वृद्धि योजना और नीति-निर्माताओं के लिए भारी चिंता का कारण बनी हुई है। सारणी 1 को देखने से स्पष्ट हो जाता है

कि 1951 में खेतिहर मजदूरों की संख्या 2 करोड़ 75 लाख थी जो 1981 में बढ़कर 5 करोड़ 55 लाख हो गई। सारणी से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सन् 2000 तक सीमान्त कृषकों की संख्या में 33 प्रतिशत वृद्धि हो जाएगी जबकि शताब्दी के अंत तक छोटे किसानों की संख्या में 50 प्रतिशत की कमी आने की संभावना है।

सारणी—1

कृषि में लगे व्यक्तियों और खेतिहर मजदूरों की संख्या

वर्ष	कृषि में संलग्न व्यक्ति	खेतिहर मजदूरों की संख्या
1951	97.3	27.5
1961	131.0	31.5
1971	126.0	47.5
1981	148.0	55.5

असमान वितरण

भूमि के पुनर्वितरण के निम्नलिखित प्रमुख तरीके हैं :

(1) भूमि-सीमा-निर्धारण
(2) भूदान
(3) सामुदायिक भूमि
(4) सरकारी भूमि

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि सरकार के पास उपलब्ध 3 करोड़ एकड़ फालतू जमीन (1970-71 की कृषि गणना) में से 44 लाख एकड़ का सरकारी आंकड़ों के अनुसार वितरण किया जा चुका है। मंगल सेवा विशारद कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश में भूमि सीमा कानून लागू होने के बाद के 13 वर्षों में 1 लाख एकड़ सामुदायिक जमीन का अधिग्रहण किया गया, जिसमें से सिर्फ 1 लाख एकड़ भूमि ही आबंटित की जा सकी। इसमें से भी 20 हजार एकड़ जमीन विभिन्न संस्थाओं और ग्राम सभाओं को बांटी गई और 76 हजार एकड़ बड़े किसानों और उनके रिश्तेदारों के पास चली गई। इसके अलावा 50 से 85 प्रतिशत तक सामुदायिक जमीन परती भूमि के विकास के नाम पर निजी संगठनों के पास चली गई। जैसा कि श्री एन. एस. जोधा ने कहा है इसी स्थिति में चलते गरीब इस जमीन के मालिकाना हक से वंचित हो गए हैं।

गरीबों को भूमि बांटने की योजना को लागू करने में कुछ भारी गलतियां हुई हैं। जमीन के वितरण का काम सिर्फ दस्तावेजों को पूरा करने और औपचारिकताएं निभाने तक सीमित नहीं हैं। न ही यह मालिकाना हक दिलाने भर से पूरा हो जाता है। इसके अलावा चकबंदी और भूमि के विकास जैसे उपायों के बिना घटिया किस्म की भूमि के आबंटन से जमीन के वितरण का कार्य सही अर्थ में पूरा नहीं हो सकता।

दूसरे, सत्ता से संरक्षण पाने वाले शक्तिशाली और शोषक वर्ग की सामंती प्रवृत्तियों को समाप्त किए बिना भूमि सुधार का उद्देश्य सिर्फ सपना ही रहेगा निहित स्वार्थी तत्वों के हथकंडों से कानूनी झगड़े ही पैदा होते हैं। यह बड़ी दुखद स्थिति है कि फालतू घोषित 43 लाख एकड़ जमीन में से सिर्फ 21.22 लाख एकड़ जमीन 1984 तक 15.91 लाख लोगों को बांटी जा सकी थी। इसका अर्थ यह हुआ कि हर एक व्यक्ति को औसतन 1.33 एकड़ भूमि दी गई। ऐसे लोगों के दुर्भाग्य का अनुमान लगाना सरल है जिनकी 16 लाख एकड़ जमीन दस साल से अधिक समय से कानूनी झगड़ों में पड़ी है।

भूमि वितरण नीति का प्रभाव

एच. लक्ष्मीनारायण ने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल के 14 गांवों का अध्ययन किया। इस अध्ययन से भूमिहीन और सीमान्त किसानों को जमीन के वितरण के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है। इस अध्ययन में प्रभावशाली भू-स्वामी वर्ग का पता लगाने तथा भू-स्वामित्व प्रणाली और खेती के तौर-तरीकों की जांच का प्रयास किया गया है। अध्ययन में 1955-56 की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करने के अलावा पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की बाद की स्थिति का सर्वेक्षण भी किया है। अध्ययन में दिए गए आंकड़ों का विश्लेषण करने से पहले इसकी तीन महत्वपूर्ण बातों का जिक्र करना उचित होगा।

(1) हर राज्य में कुछ प्रभावशाली जातियों का अध्ययन किया गया। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में जाट, अहीर, ठाकुर, ब्राह्मण और कुर्मियों का, पंजाब में जाटों का और महाराष्ट्र में मराठा जातियों का सर्वेक्षण किया गया। हालांकि केरल में इजरा जाति के लोग और तमिलनाडु में ईसाई और मुसलमानों का भूमि पर अच्छा नियंत्रण है। लेकिन उन्हें प्रभावशाली जातियों में नहीं गिना जा सकता। तमिलनाडु में जमीन वाले कई परिवारों के सदस्य कृषि-मजदूर के रूप में भी काम करते हैं। इसके साथ ही इनमें से अनेक परिवारों के लोग भूस्वामी, काश्तकार और खेतिहर मजदूर के तौर पर काम करते हैं। सिर्फ पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रभावशाली जातियों का कृषि के क्षेत्र में दबदबा ज्यादा है।

(2) कृषि के लिए अधिकतर मजदूर हरिजन समुदाय से होते हैं और वे पुश्तैनी तरीके से ये कार्य करते आ रहे हैं।

(3) प्रभावशाली जातियों के कब्जे में जितनी जमीन आती है, वह उनके द्वारा स्वयं खेती के लिए उपयोग में लाई जा रही भूमि के मुकाबले काफी अधिक है। इसका मतलब यह हुआ कि ये लोग भू-स्वामित्व संबंधी कानून का उल्लंघन करके अपनी जमीन बटाई पर दे देते हैं। अनुसूचित जातियों तथा अन्य पिछड़ी जातियों के लोगों के स्वामित्व में जितनी जमीन है वह उनके द्वारा कमाई जा रही जमीन के मुकाबले काफी कम है यानी खेती के लिए जमीन बटाई पर लेते हैं।

पंजाब के गांवों मे काम-धंधे और जातियों के संबंध का विश्लेषण करने से पता चलता है कि प्रभावशाली भू-स्वामी जातियों और खेतिहर मजदूर (हरिजन) जातियों की स्थिति में भारी अंतर है। एक वर्ग का व्यक्ति दूसरे वर्ग में नहीं जा सकता। खेतिहर मजदूर के बच्चों के लिए शिक्षा प्राप्त करना और अपना पुश्तैनी धंधा बदलना बड़ा मुश्किल है।

चिंता का विषय यह है कि देश में भूमि सुधार की जो नीति अपनाई जा रही है वह पूरी तरह असफल रही है। वास्तव में इस नीति को समानता, न्याय, सामाजिक ढांचे में सुधार और गरीबी दूर करने का एक सशक्त माध्यम बनाना चाहिए। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यों-ज्यों भूमिहीनों की संख्या बढ़ रही है उनका रोजी-रोटी की तलाश में शहरों की ओर पलायन भी बढ़ रहा है। इससे शहरों में झोपड़पट्टियों की समस्या और गंभीर होती जा रही है। वहां नागरिक सुविधाओं पर दबाव बढ़ता जा रहा है और सामाजिक वर्ग भेद जन्म ले रहा है। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में चलाए जा रहे विकास कार्यक्रमों पर भी इस स्थिति का बुरा असर पड़ा है। अचल संपत्ति से रहित भूमिहीन किसानों को बैंक के जरिए संस्थागत ऋण उपलब्ध नहीं कराए जा सकते हैं। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को लागू करने से प्राप्त अनुभव से पता चलता है कि इस कार्यक्रम का फायदा उठाने वाले लोग गलत तरीके से गरीबों की सूची में शामिल किए गए है जबकि जो लोग वास्तव में इसके हकदार थे वे गरीबी में उसी तरह तड़प रहे हैं।

केरल का उदाहरण

भूमि-सुधारों पर विचार करते समय हमारे सामने गरीबी उन्मूलन का कठिन कार्य ध्यान में आ जाता है। इस बुराई को दूर करने में भूमि-सुधार जैसे संस्थागत उपाय अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण केरल है जहां भूमि सुधारों को लागू करके गरीबी दूर करने में महत्वपूर्ण सफलता मिली है।

कुछ हद तक हरित क्रांति की महान सफलता ने हमारे दृष्टिकोण को एक नई दिशा दी है। यह सही है कि अगर उपज और आय में वृद्धि का फायदा गांवों के गरीब लोगों तक पहुंच जाता तो शायद भूमि-सुधार की इतनी आवश्यकता नहीं होती। लेकिन केरल के उदाहरण को भूमि-सुधार की कार्यकुशलता बढ़ाने के एक उपाय के रूप में देखा जाना चाहिए। अगर इन उपायों को अन्य राज्यों में भी लागू किया जाता तो ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी के भूत को भगाने में काफी मदद मिलती।

केरल में भूमि सुधार का क्रांतिकारी कार्य 1969 में राज्य के 15 लाख काश्तकारों को जमीन दिलाने के साथ-साथ शुरू हुआ। इससे इन काश्तकारों की आमदनी बढ़ी और उन्हें दीर्घकालीन आर्थिक सुरक्षा मिली। केरल ने विकास के लिए प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की अनिवार्यता की शर्त को झूठा साबित कर दिखाया है। वहां प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत का दो तिहाई है। लेकिन जीवन-स्तर संबंधी अन्य बातों के लिहाज से केरल अन्य राज्यों से काफी आगे हैं। उदाहरण के लिए वहां औसत आयु 70 वर्ष से अधिक है।

हमारी आवश्यकता

आज जरूरत इस बात की है कि एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कड़ाई से भू-स्वामित्व प्रणाली में सुधार किया जाए ताकि भूमि-सुधार के लिए आधार तैयार हो सके। आमतौर पर देखा गया है कि बेनामी जमींदार अपनी जमीन सीमान्त कृषकों या खेतिहर मजदूरों को बटाई पर दे देते हैं। कड़ी मेहनत के बावजूद इन बटाईदारों को उपज का उचित तथा पर्याप्त हिस्सा नहीं मिलता। अगर सरकार बटाईदारों की उपज में हिस्सेदारी के लिए कानून बना दे तो इससे बड़ा फायदा होगा। बटाईदारों की हिस्सेदारी को अगर काफी बढ़ा दिया जाए तो भूमि मालिक को यह महसूस होने लगेगा कि ज्यादा जमीन रखना फायदेमंद नहीं है। इससे वे बटाई पर दी गई जमीन काश्तकार को सौंपने को मजबूर हो सकते हैं। राज्य सरकारें कानून के जरिए इस तरह का बदलाव लाने में मदद कर सकती हैं। दूसरी ओर अगर बड़े जमींदारों पर कर लगाए जाएं तो सरकार इस तरह इकट्ठा किया गया धन छोटे और सीमांत किसानों की समस्याओं को हल करने में लगा सकती है। इस पैसे के जरिए छोटे और सीमांत किसानों को खेती में काम आने वाली बेहतर किस्म की कृषि-सामग्री उपलब्ध कराई जा सकती है। इसके अलावा भूमि सुधारों को सावधानीपूर्वक लागू करने से विकास कार्यक्रमों का फायदा सबसे निचले स्तर के लोगों तक पहुंचाने में काफी मदद मिल सकती है। इस तरह के सुधारों से ग्रामीण क्षेत्रों में जमीन संबंधी झगड़ों को रोकने में भी मदद मिलेगी।

अनुवाद : निरुपम,
बी-1/1386-ए बसंत कुंज,
नई दिल्ली-110030

"राजीव गांधी—एक श्रद्धांजलि"

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

भारत इस समय श्री राजीव गांधी की हत्या के भयंकर आघात की पीड़ा से मर्माहत है। मद्रास से 50 किलोमीटर श्रीपेराम्बूदूर की एक चुनाव सभा में बम विस्फोट से श्री राजीव गांधी की मृत्यु हो गई। इस निमर्म हत्या से सारी दुनिया सकते में आ गई है। यह आक्रमण श्री गांधी पर नहीं था, बल्कि यह हमारी लोकतंत्र की यशस्वी परम्परा और भारत की गौरवशाली आत्मनिर्भर विचार पद्धत्ति पर किया गया है। कैसी विडम्बना है कि जिस देश ने संसार के सबसे बड़े साम्राज्य के विरुद्ध स्वाधीनता की लड़ाई अहिंसा से जीती हो, जिस देश ने नौ लोकसभा चुनाव शांतिपूर्वक आयोजित कर विश्व में एक सफल लोकतंत्र की ख्याति पाई हो, उसी देश में आम चुनाव के दौरान एक प्रमुख राजनीतिक दल के नेता की जघन्य हत्या केवल इसलिए कर दी गई कि इस देश के लोगों का विश्वास लोकतांत्रिक समाज और उसकी नीतियों से उठ जाए।

श्री राजीव गांधी की हत्या पर देश में जो प्रतिक्रिया हुई उसे ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरामन का यह आह्वान महत्वपूर्ण है कि हमें सार्वजनिक जीवन में हिंसा का विरोध करना चाहिए। उपराष्ट्रपति डाक्टर शंकर दयाल शर्मा ने इसी बात को और आगे बढ़ाते हुए देश वासियों को याद दिलाया है कि इस धक्के से देश की एकता और राष्ट्रहित को कोई हानि न होने पाए। प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर ने भी यही कहा कि जो लोग हिंसा के जरिए देश को विनाश की ओर ले जाना चाहते हैं उनकी साजिश को हमें सफल नहीं होने देना है। श्री राजीव गांधी की हत्या पर विश्व के कोने-कोने से शोक संदेश और प्रतिक्रियाएं व्यक्त की गईं उनसे पता चलता है कि श्री गांधी ने काफी कम उम्र और असाधारण परिस्थिति में प्रधानमंत्री पद संभालने के बावजूद मात्र छः-साढ़े छह साल के सार्वजनिक जीवन में विश्व के राजनेताओं में अपना स्थान बना लिया था। यह इस देश का दुर्भाग्य है कि उनके जैसे नेता का इतनी शीघ्र और इस प्रकार का अंत हुआ। श्री राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री बनने के पहले ही से अपनी जान की परवाह किए बिना देश में हिंसा के उन्माद को रोकने और दुखी लोगों को सांत्वना देने की कोशिश की। प्रधानमंत्री पद संभालने के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने पंजाब मसले को हल करने के लिए समझौते पर हस्ताक्षर किए। उन्होंने असम विवाद को सुलझाकर वहां के छात्रों और युवकों को समाज की ही नहीं बल्कि शासन की मुख्य धारा में लाकर खड़ा कर दिया। यह जानते हुए भी श्रीलंका के एक क्षेत्र में भारत के विरुद्ध बड़ी दुर्भावनाएं हैं उन्होंने जान जोखिम में डालकर श्रीलंका के साथ तमिल समस्या के समाधान के लिए समझौता किया। समझौते

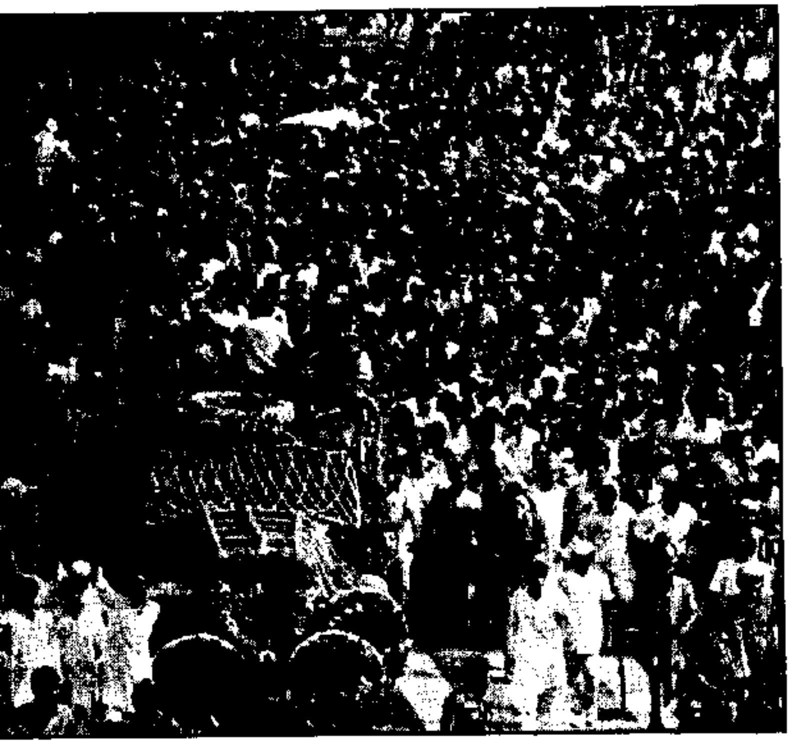

को लागू करने के लिए भारतीय सेना पूर्वोत्तर श्रीलंका में शांति स्थापित करने भेजी गई।

श्री गांधी के प्रयास से पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग क्षेत्र में उठा एक बड़ा विवाद भी शांत हुआ। श्री राजीव गांधी हमेशा आगे की सोचते थे। 21वीं सदी में भारत कैसा होगा यह चित्र उनके मन में स्पष्ट था। उन्होंने पंचायती राज तथा जवाहर रोजगार योजना जैसे कार्यक्रमों के जरिए गरीब से गरीब व्यक्ति को राहत पहुंचाने, उसे सत्ता में भागीदार बनाने और जीविका का अधिकार दिलाने का प्रयास किया। देश को श्री गांधी से बहुत आशाएं थीं। आज उनके उठ जाने से गरीबों का एक सच्चा पक्षधर दुनिया से चला गया है। दुर्बल वर्ग के लोगों को उनकी क्षति हमेशा महसूस होती रहेगी।

भारत विविधताओं से भरा देश है और उसकी विविधता ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। श्री राजीव गांधी विविधताओं में एकता की जीती-जागती मिसाल थे। जब श्री राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने तो किसी को भी इसका आश्चर्य नहीं हुआ, ऐसा लगा कि उनका प्रधानमंत्री बनना स्वाभाविक है। लेकिन 1984 के आम चुनाव में भारत की जनता ने भारी बहुमत से उन्हें विजयी बनाया तो यह सिद्ध हो गया कि यह देश धर्म, सम्प्रदाय या किसी अन्य संकीर्ण आधार पर अपना नेता नहीं चुनता। यहां के लोग उसी को अपना सच्चा नेता मानते हैं जिसे वे यहां की मिली-जुली संस्कृति के संरक्षण के योग्य समझते हैं।

भारत के लोग एक ऐसे नेतृत्व की अपेक्षा करते हैं जिसके नेतृत्व में विभिन्न सम्प्रदायों, विभिन्न वर्गों और विभिन्न मतों के लोग एक साथ रह सकें और मिल-जुलकर देश का गौरव बढ़ा सकें।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी विदेश नीति से विश्व के राष्ट्रों में अपना स्थान बना लिया था। श्री राजीव गांधी के लिए हालांकि राजनीति बिल्कुल नई दिशा थी लेकिन उन्होंने अपनी विदेश नीति के जरिए अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपना स्थान सुनिश्चित कर लिया। उनके असामयिक निधन पर अमरीका के राष्ट्रपति श्री बुश और सोवियत राष्ट्रपति श्री गोर्बाचोव ने जो विचार प्रकट किए हैं, उससे यह बात सिद्ध हो जाती है।

अक्सर देखा गया है कि पड़ोसियों का विश्वास प्राप्त करना दूर-दराज के देशों से समर्थन पाने के मुकाबले कहीं कठिन होता है। और जब पड़ोसी के साथ कोई विवाद हो तो यह और भी कठिन हो जाता है। श्री गांधी के निधन पर अपने शोक संदेश में चीन और नेपाल ने जो विचार प्रकट किए हैं उससे श्री राजीव गांधी की सफल विदेश नीति का पता चल जाता है। चाहे गुट निरपेक्ष आंदोलन का मंच हो या संयुक्त राष्ट्र संघ। श्री गांधी की अंतर्राष्ट्रीय छवि काफी उज्ज्वल थी।

एक तरफ राजीवजी आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलोजी के हिमायती थे तो दूसरी ओर देश की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और परम्परा का भी उन्हें उतना ही ख्याल था उन्होंने देश की मिली-जुली संस्कृति को सही मायनों में समझा। इसी का यह नतीजा है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, बौद्ध, सिख, जैन आदि सभी धर्मावलम्बी उनका समान रूप से आदर करते हैं। आज समय ने श्री राजीव गांधी को हमसे छीन लिया है लेकिन जिन मूल्यों पर वे चले, वे हमारे सामने हैं। उनकी रक्षा करना और उसके द्वारा देश को उन्नति के शिखर पर ले जाना हम सबका पवित्र कर्तव्य हो जाता है।

(आकाशवाणी हिन्दी समाचार एकांश से साभार)

पर्यावरण की रक्षा से पृथ्वी की सुरक्षा

डा. राकेश अग्रवाल

पंच तत्व मिल बनही शरीरा।
क्षिति जल पावक गगन समीरा।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु जीवन के ये पांच तत्व माने जाते हैं। वैसे तो प्रकृति में इन तत्वों की मात्रा अनन्त है किन्तु मनुष्य द्वारा प्रकृति से छेड़छाड़ करने के कारण इन तत्वों की मात्रा, स्वरूप तथा गुणवत्ता में निरन्तर अन्तर आ रहा है। पर्यावरण प्रदूषण व असन्तुलन इसी की देन है। पर्यावरण प्रदूषित होने से मानव-जाति को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्राणी जगत के जीवन को खतरा बढ़ता जा रहा है। यहां तक कि प्राणियों के लिए उपयोगी निर्जीव चीजें भी पर्यावरण प्रदूषण से प्रभावित हो रही हैं। इसीलिए पर्यावरण की समस्या आज विश्व की प्रमुख समस्या बन गई है। इस समस्या को लेकर विश्व के वैज्ञानिक, समाजशास्त्री, शिक्षाविद् आदि सभी चिंतित हैं।

पर्यावरण असन्तुलन से सारी धरती त्रस्त हो रही है। वायुमण्डल दूषित हो गया है, ओजोन की रक्षा-पट्टी कमजोर होने से तापमान बढ़ता जा रहा है, मौसम का क्रम बिगड़ रहा है, पानी के परम्परागत स्रोत सूखने लगे हैं, भूमि की उर्वरा शक्ति तेजी से क्षीण हो रही है, भू-क्षरण, मिट्टी-कटाव, बाढ़, अकाल आदि की विभीषिका तेजी से बढ़ रही है, बंजर क्षेत्र व रेगिस्तान फैलते जा रहे हैं, जीवधारी रोगों से ग्रसित होते जा रहे हैं जिससे भविष्य की सुरक्षा तथा सुख-शान्ति पर प्रश्नचिह्न लगने लगा है।

पर्यावरण प्रदूषण मनुष्य द्वारा जाने-अनजाने स्वयं उत्पन्न की गई समस्या है। तीव्र औद्योगीकरण, वनों के उन्मुक्त कटान, नदियों में कूड़े-कचरे का प्रवाह, कृषि में रसायनों का असन्तुलित प्रयोग और निरन्तर तेजी से बढ़ती जनसंख्या आदि द्वारा पर्यावरण को बिगाड़ने के लिए मनुष्य पूरी तरह जिम्मेदार है। पर्यावरण का प्रदूषण मनुष्य ही नहीं सभी जीव-जन्तुओं के लिए अभिशाप बन जाएगा। आगे आने वाली पीढ़ियां इस अभिशाप के लिए पूर्वजों को कोसती रहेंगी।

पर्यावरण प्रदूषण का क्षेत्र निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यों तो प्रदूषण सम्पूर्ण वायुमण्डल को प्रभावित करता है। फिर भी शहरी क्षेत्रों में इसका प्रभाव अधिक रहता है। अब पर्यावरण प्रदूषण के कदम गांवों की ओर भी बढ़ते जा रहे हैं।

वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण एक अत्यन्त गम्भीर समस्या है। इससे मानव-जाति व अन्य जीवों के स्वास्थ्य तथा जीवन के लिए खतरा पैदा होता है। कल-कारखानों से छोड़े गए धुएं व धूल के कणों तथा नाना प्रकार की गैसों, सड़कों पर दौड़ते मोटर वाहनों के धुएं आदि से वायुमण्डल तेजी से प्रदूषित होता जा रहा है। शहरों के घोट भरे वातावरण में श्वास लेना दूभर बन गया है। उदाहरण के लिए उ. प्र. की प्रमुख मण्डी हापुड़ में स्थापित सरेस मिलों से आती दुर्गन्ध नगरवासियों का सिर दर्द बनी रहती है। कारखानों, फैक्ट्रियों के नगरों में रात को सोने के बाद सुबह धुएं की काली पर्त जमी हुई मिलती है। स्वतः ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कितना धुआं और विषाक्त गैसें श्वास द्वारा मनुष्य के फेफड़ों में जाकर स्वास्थ्य पर कुठाराघात करती होंगी।

एक वैज्ञानिक रिपोर्ट के अनुसार वायुमण्डल में विषाक्त रसायनिक पदार्थ गैसों के रूप में इतनी तेजी से छोड़े जा रहे हैं कि उनके प्रभावों का विश्लेषण कर पाना असम्भव होता जा रहा है। वायुमण्डल में फैली हुई विषाक्त हवाएं दूर जाकर वर्षा के साथ धरती पर बरस कर कृषि, वनस्पति और वनों को क्षति पहुंचाती हैं। अनेक देशों में तेजाबी वर्षा इसी वायु-प्रदूषण का परिणाम है। भारत में गैस रिसाव से हुए मौत के ताण्डव की बड़ी नवीनतम घटना भोपाल गैस काण्ड है। जिसमें लगभग 2500 व्यक्ति काल के ग्रास बन गए थे और हजारों बीमार हुए व्यक्ति आज भी वायु-प्रदूषण के अभिशाप को ढो रहे हैं।

विभिन्न स्रोतों से निकलने वाले वायु-प्रदूषकों का वायु, जल, भूमि, वनस्पति, जीव-जन्तु, मनुष्य, पर्यावरण और सम्पत्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दूषित वायु अमूल्य स्मारकों को क्षय

रोगी की तरह क्रान्ति विहीन और खोखला बना देती है। वायु-प्रदूषण मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। वायु में मिश्रित धूल-धुआं और विषाक्त गैसें आदि खांसी, दमा, इफाइमा, सिलिकोसिस, तपेदिक यहां तक कैंसर जैसी नाना प्रकार की बीमारियां पैदा करती हैं। हवा में घुले सल्फरडाईआक्साइड, हाइड्रोकार्बन तथा नाइट्रोजन आक्साइड आंखों, त्वचा, फेफड़ों आदि को रोगी बनाते हैं। वातावरण में विषैली गैसों की अधिकता हवा बनकर लोगों को लग जाती है। यहां तक कि वह मौत का भी कारण बन जाती है। सभी वायु प्रदूषक किसी न किसी रूप में प्राणी जगत पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

जल-प्रदूषण

वायु और जल पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व के लिए नितान्त आवश्यक हैं। पृथ्वी का तीन चौथाई भाग पानी से आच्छादित है, लेकिन मात्र 0.3 प्रतिशत जल ही पीने योग्य है। जबकि मीठे पानी की वार्षिक आवश्यकता निरन्तर बढ़ रही है। विभिन्न वर्षों में मीठे पानी की वार्षिक आवश्यकता को तालिका में दिखाया गया है।

तालिका

मीठे पानी की वार्षिक आवश्यकता (घन किमी.)

	प्रयोग	सन् 1985		सन् 2000		सन् 2025	
		भूमितल जल	भूमिगत जल	भूमितल जल	भूमिगत जल	भूमितल जल	भूमिगत जल
1.	सिंचाई	320	150	420	210	510	260
2.	अन्य प्रयोग	40	30	80	40	190	90
(अ)	घरेलू व पशुओं के लिए	16.7			28.7		40
(ब)	औद्योगिक	10			30		120
(स)	ताप विद्युत के लिए	2.7			3.3		4
(द)	अन्य	10.6			58		116
	कुल	360	180	500	250	700	350
	सकल	540		750		1050	

विभिन्न उद्योगों के हानिकारक उत्सर्जित व्यर्थ पदार्थ, घरेलू मल व कचरा, कृषि में प्रयुक्त रसायनिक उर्वरक तथा कीटनाशक आदि के कारण जल-प्रदूषण की समस्या भयंकर होती जा रही है। प्रदूषणकारी उद्योगों में खाद उद्योग, कास्टिक सोडा उद्योग, कीटनाशक उद्योग, पैट्रोल-रसायन रिफाइनरी, चर्म उद्योग, रबर उद्योग, कागज उद्योग, शराब उद्योग आदि प्रमुख हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार भारत में 70 प्रतिशत जल प्रदूषित है। बहुत-सा कचरा व औद्योगिक अवशिष्ट पदार्थ बिना उपचार के ही नदियों में बहा दिए जाते हैं। देश में 14 बड़ी, 44 मध्यम तथा अनेकों छोटी नदियां हैं। इन नदियों में लगभग 1645 घन कि.मी. जल प्रति वर्ष प्रवाहित होता है। लगभग सभी नदियां प्रदूषण की चपेट में आ गई हैं। अकेले गंगा के 2500 कि. मी. लम्बे रास्ते में ही 19.79 लाख कि. ग्रा. कचरा प्रतिदिन मिलाया जाता है जिससे अनेक विषैले तत्व पानी में मिश्रित हो जाते हैं। सोडियम, पोटाशियम, क्लोराइड, सल्फेट व बोरान आदि का भूमि में अनुपात बिगड़ जाने से उसकी उर्वरा शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तेल व ग्रीस की उपस्थिति से जल की ऊपरी सतह पर एक परत बन जाने के कारण सूर्य का प्रकाश पानी की निचली सतहों पर नहीं पहुंच पाता है, जिससे जल में विषाणुओं को पनपने का अवसर मिलता है। नदियों के साथ करोड़ों टन गन्दगी प्रतिवर्ष समुद्र में पहुंचती है जिससे समुद्री जीवों का जीवन खतरे में पड़ जाता है।

प्रदूषित जल को शुद्ध करके पीने योग्य बनाने के बाद भी उसमें अनेक हानिकारक तत्व विद्यमान रहते हैं। जल प्रदूषण से हृदय, गुर्दे, हड्डी, दांत, फेफड़े, आंख, रुधिर आदि से सम्बन्धित अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। जल में उपस्थित कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ उसकी कठोरता को बढ़ाकर उसे हानिकारक बनाते हैं। मैगनीशियम सल्फेट आंतों में जलन पैदा करता है। फ्लोराइड से हड्डियों एवं दांतों का क्षय होता है। पानी में मिश्रित भारी धातु तत्व जैसे आर्सेनिक, कैडमियम, लैड, पारा आदि शरीर पर विषैले प्रभाव डालते हैं। इनसे जोड़ों में दर्द, गुर्दे, हृदय व तन्त्रिका यंत्र में विकार होते हैं। इसी प्रकार अन्य जल प्रदूषक भी वायु प्रदूषकों की भांति अनजाने ही मनुष्य बीमारियों से ग्रसित कर देते हैं।

ध्वनि प्रदूषण अथवा शोर

बढ़ते हुए शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के साथ शोर की समस्या भी बढ़ती जा रही है। मोटर वाहनों, कल-कारखानों आदि का तीव्र शोर पर्यावरण को अपने कम्पनों द्वारा प्रदूषित करता है जिससे मनुष्य की श्रवण शक्ति पर ही प्रभाव नहीं पड़ता वरन् उसे मानसिक और मनोवैज्ञानिक विकारों का भी सामना करना पड़ता है। शोर से हृदय और मस्तिष्क कमजोर होते हैं, केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र एवं आमाशय पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। शोर से अनिन्द्रा, सिरदर्द, तनाव, कुण्ठा, चिड़चिड़ापन और झुंझलाहट बढ़ती है। प्रायः शोर की अधिकता बहरेपन और गूंगेपन का भी कारण बन जाती है। शोर के कारण श्वसन गति, रक्तचाप और नाड़ी गति में परिवर्तन आ जाने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शोर पाचन विकार को भी जन्म देता है। शोर रोगियों को अत्यन्त कष्टकारक सिद्ध होता है। इससे रोगियों को स्वास्थ्य लाभ में देर लगती है।

शोर मनुष्य और जीव-जन्तुओं पर ही दुष्प्रभाव नहीं डालता बल्कि पेड़-पौधों इमारतों तथा प्राकृतिक सम्पदा को भी हानि पहुंचाता है। अमरीका के सुपरमैगनक जेट विमान से उठने वाली तरंगें केन्योक की प्राचीन गुफाओं में दरारें पैदा कर चुकी हैं। जेट विमानों के भारी शोर के कारण हृदय रोगियों का जीवन संकट में पड़ जाता है। बढ़ता हुआ शोर प्राणियों को परावैंगनी किरणों से बचाने वाली ओजोन पट्टी को भी कमजोर कर रहा है। अनुसंधानों से पता चला है कि शोर की तीव्रता समय की गति के समय निरन्तर बढ़ती जा रही है।

ध्वनि की तीव्रता मापने की इकाई डेसीबल है। साधारणतया 50 डेसीबल ध्वनि कानों को बुरी नहीं लगती है। 75 डेसीबल ध्वनि साधारण तेज तथा 95 डेसीबल ध्वनि काफी तेज मानी जाती है। 140 डेसीबल की ध्वनि कष्टकारक कही जाती है। विशेषज्ञों का मत है कि 85 डेसीबल से अधिक ध्वनि में अधिक समय रहने से मनुष्य में बहरेपन का दोष उत्पन्न हो सकता है। 120 डेसीबल या अधिक शोर से मनुष्य को चक्कर आ सकते हैं। 155 डेसीबल से अधिक तीव्रता का शोर त्वचा को भी जला सकता है। 180 डेसीबल से अधिक तीव्रता वाले शोर से मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है। शोर के इन बुरे प्रभावों को देखते हुए अनेक देशों ने 75-85 डेसीबल से अधिक शोर पर बंदिश लगा दी है।

थल अथवा मृदा प्रदूषण

वायु और जल के प्रदूषण के अलावा कृषि में रसायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के असन्तुलित प्रयोग के कारण भूमि की सतह अत्याधिक प्रदूषित हो गई है। जिस कारण भूमि पर पैदा होने वाले अनाज, फल-सब्जियों पर भी प्रदूषण का असर दिखाई दे रहा है। भोजन के माध्यम से इन खतरनाक रसायनों और कीटनाशकों के हानिकारक तत्व मानव शरीर में पहुंचकर नाना प्रकार की बीमारियां उत्पन्न कर रहे हैं। अप्रैल 1973 में अमरीकी केमिकल सोसाइटी ने कीटनाशक दवाओं के दूरगामी खतरों के बारे में आगाह कर दिया था कि कीटनाशक दवाएं फसलों में शेष रहकर उन जीवों को नुकसान पहुंचा सकती है जिनके लिए ये बनाई ही नहीं गई हैं। कीटनाशकों की विषाक्तता की अब तो यह स्थिति हो गई है कि बच्चा संसार में आंखें बाद में खोलता है, जहरीले कीटनाशकों के अवशेष मां के गर्भ में ही उस पर पहुंचने शुरू हो जाते हैं। पंजाब में 75 महिलाओं के दूध के, लिए गए नमूनों में कीटनाशक डी. डी. टी. और बी. एच. सी. के अवशेष बहुतायत में पाए गए। वर्ल्डवाच संस्था के अनुसार कीटनाशकों के कारण मां के दूध के माध्यम से बच्चे प्रतिदिन सुरक्षित स्तर से 21गुना अधिक खतरनाक रसायनों का विषपान कर रहे हैं। गाय, भैंस तथा अन्य पशुओं के दूध में भी चारे द्वारा कीटनाशकों का पूरा असर पहुंच रहा है। केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसंधान संस्थान तथा भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के अध्ययन के अनुसार दूध के 17 नमूनों में से 13 नमूनों में डी. डी. टी. की मात्रा 0.02 पी. पी.एम. पाई गई। मुर्गी के अण्डे भी कीटनाशक दवाओं से प्रभावित पाए गए हैं। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के एक अध्ययन के अनुसार दिल्लीवासियों के वसा ऊतकों में भी डी. डी. टी. के तत्व पाए गए हैं। कीटनाशक दवाओं का मानव की शरीर संरचना पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मानव शरीर में कीटनाशक दवाओं की विषाक्तता के लक्षण एक साथ नहीं उभरते हैं। जब इनका विष भारी मात्रा में शरीर में एकत्र हो जाता है तो ये अपना प्रभाव दिखाने लगते हैं। इनके कारण रुधिर, हृदय, गुर्दा, मस्तिष्क तथा आंख सम्बन्धी रोग ही उत्पन्न नहीं होते वरन् कैंसर होने की भी सम्भावना बनी रहती है।

सीधे प्रभाव में आने के कारण कृषि श्रमिक तथा मलेरिया कर्मचारी कीटनाशक दवाओं के सबसे अधिक शिकार होते हैं। उन्हें इन दवाओं के कारण चक्कर, रतौंधी, लकवा, अनिन्द्रा, तथा मानसिक रोग आदि हो जाता है। विश्व में हर वर्ष कीटनाशकों की विषाक्तता के शिकारों की संख्या 4 लाख से 20 लाख तक रहती है। इनमें से अधिकांश मामले भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों के किसानों के होते हैं।

कृषि रसायनों के अत्याधिक प्रयोग के कारण पर्यावरण सन्तुलन को भी खतरा बढ़ता जा रहा है। कीटनाशकों के घातक परिणामों के बाद भी भारत में इनका प्रयोग लगातार बढ़ता जा रहा है। यहां पिछले तीन दशकों में कीटनाशक दवाओं की खपत 10 गुना बढ़कर 80,000 टन प्रतिवर्ष से अधिक हो गई है। डी. डी. टी. तथा बी. एच. सी. की खपत कुल

तालिका

(टन प्रति वर्ष)

वर्ष	(टन प्रति वर्ष) (कुल कीटनाशकों की खपत	केवल डी. डी. टी. एवं बी. एच. सी.
1960	8,620	6131
1970	24,325	22,196
1980	58,980	39,760
1989	86,670	49,469

कीटनाशकों की खपत की 60 प्रतिशत है। तालिका में विभिन्न वर्षों में कीटनाशक दवाओं की बढ़ती हुई खपत को दिखाया गया है।

रेडियोधर्मी अथवा ताप प्रदूषण

जीवन को सुखी, सम्पन्न और सुविधाओं से परिपूर्ण बनाने से भी आगे मनुष्य प्रकृति पर विजय पाने और दुनिया को जीत लेने की चाह में नित नए प्रयोग व आविष्कार करता आ रहा है। इस निहित स्वार्थ की दौड़ में सम्पूर्ण प्राणी जगत के हितों को नजर-अन्दाज किया जाता रहा है। इसी का परिणाम है कि सारी पृथ्वी को अणु, परमाणु, हाइड्रोजन बमों के परीक्षणों, नाभिकीय संस्थानों, रेडियोधर्मी अवशिष्ट पदार्थों, रेडियो आइसोप्स आदि से होने वाले विकिरण के भयंकर प्रदूषण से ग्रसित होना पड़ रहा है। इसका ताप पर्यावरण संतुलन को बिगाड़ता है। रेडियोधर्मी विकिरण न तो दिखाई देता है और न ही इसमें किसी प्रकार की गंध होती है किन्तु शरीर पर इसका घातक प्रभाव तुरन्त पड़ने लगता है। यह कैंसर उत्पन्न करता है। बांझपन, अपंगता इसके भयानक अभिशाप है। रेडियोधर्मी प्रदूषण से त्वचा जल जाती है। यह प्रदूषण वनस्पति को समूल नष्ट कर देता है। यहां तक कि भूमि की उर्वरा शक्ति इससे बुरी तरह प्रभावित होती है। सारा वातावरण विषैला हो जाता है। हिरोशिमा और नागासाकी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, जहां परमाणु बम ने सब कुछ नष्ट कर दिया था और रेडियोधर्मी प्रदूषण के परिणाम लम्बे काल तक सामने आते रहे।

परमाणु ऊर्जा विकसित करने वाले नाभकीय संस्थानों की बढ़ती हुई संख्या के साथ रिसने वाले रेडियोधर्मी विकिरण की संभावना भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। इनके लगातार विकिरण से पर्यावरण अधिक प्रदूषित होता जाएगा। वैज्ञानिकों का मत है कि सम्पूर्ण मानव-जाति के कल्याण को दृष्टिगत रखते हुए समय रहते इस पर नियंत्रण के लिए प्रभावी कदम नहीं उठाया गया तो इस प्रदूषण के आत्मघाती परिणाम होंगे।

पर्यावरण की रक्षा

औद्योगिक विकास, शहरीकरण, कीटनाशकों के प्रयोग तथा परमाणु ऊर्जा आदि के द्वारा मानव समाज लाभान्वित अवश्य हुआ है, किन्तु तात्कालिक उपयोगिता के इस मोह के कारण पर्यावरण प्रदूषण के घातक परिणामों को अनदेखा नहीं करना चाहिए। वास्तव में प्राणी जगत का सुख स्वस्थ पर्यावरण में ही निहित है।

पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए जहां प्रदूषण स्रोतों को नियंत्रित करने की आवश्यकता है वहीं पर्यावरण को स्वस्थ बनाने के लिए वनों का विकास करने जैसे कल्याणकारी कदम उठाने चाहिए।

विभिन्न प्रदूषणों को रोकने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में पर्यावरण संगत विकास योजनाएं बनाई जानी चाहिए। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विकास को रोके बिना भी पर्यावरण प्रदूषित होने से बचाने के लिए अवशिष्ट प्रदूषक पदार्थों को कुशलतापूर्वक निस्तारित किया जा सकता है। जिन अवशिष्ट पदार्थों की कम्पोस्ट खाद बनाकर उपयोग में लाया जा सकता है, उन्हें जल में नहीं बहाना चाहिए। जो भी अवशिष्ट पदार्थ जल में बहाये जाए उन्हें पर्याप्त उपचारित कर लेना चाहिए जिससे उनके हानिकारक तत्व जल में नहीं जाने पाएं। रसायनिक कचरे को गला कर पुनः किसी उपयोग में लाने योग्य बनाना चाहिए। वायु में धुआं छोड़ने वाले साधनों का कम से कम प्रयोग करना चाहिए। कीटनाशकों का प्रयोग संयम और सावधानीपूर्वक करना चाहिए। उद्योगों तथा वाहनों आदि शोर नियंत्रकों का उपयोग जरूर करना चाहिए।

पर्यावरण को स्वस्थ व संतुलित बनाने में पेड़-पौधों का बहुत महत्व होता है। ये हानिकारक गैसों का अवशोषण करके प्राणवायु आक्सीजन का उत्पादन करते हैं। पेड़ों की हरित पट्टी से शोर की तीव्रता कम की जा सकती है। स्वस्थ पर्यावरण के लिए भूमि का एक तिहाई भाग वनों से आच्छादित होना चाहिए।

पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जन-जीवन में चेतना उत्पन्न होना जरूरी है। जन जागरुकता से ही पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं का निराकरण हो सकता है। पर्यावरण के प्रति जन-चेतना जगाने में पर्यावरणीय शिक्षा जरूरी है। इसके लिए प्रचार माध्यमों का सहारा लिया जा सकता है।

यह वसुंधरा मनुष्य, जीव-जन्तु, वनस्पति सबकी है। हम अपने छुद्र स्वार्थों को त्यागकर पर्यावरण की रक्षा में पूर्ण योगदान करें तभी यह जीवनदायिनी धरा सुरक्षित रह सकेगी। इसी में सबका कल्याण निहित है।

एस. एस. वी. (पो. ग्रे.) कालेज,
'हिमदीप' राधापुरी,
हापुड़-245101 (उ. प्र.)

पर्यावरण

विनय जोशी

राजस्थान का एक ग्राम—खेजरली। यहां विश्नोई जाति के लोग रहते थे। सन् 1730 की घटना है। तत्कालीन राजा ने एक किला बनवाना था। उसके लिए पत्थर जोड़ने के लिए चूना पकाना आवश्यक था। ईंधन के लिए खेजरली गांव के वृक्षों को काटने का आदेश दे दिया गया। खेजरली गांव के विश्नोइयों ने इसका विरोध किया। जब राजा का आदेश वापिस न हो सका तो गांववासियों ने उसे बचाने के लिए बलिदान का रास्ता अपनाया। 363 पुरुष, स्त्री, बच्चों व बुजुर्गों ने वृक्षों के साथ अपने आपको चिपका लिया और उनकी सुरक्षा करने लगे। परन्तु वृक्षों के साथ ही उनके सिर भी काट दिए गए। इस अभूतपूर्व बलिदान ने राजा का दिल दहला दिया। उसका हृदय परिवर्तन हो गया, उसने नया आदेश दिया कि आज के बाद खेजरली के वृक्ष कभी नहीं काटे जाएंगे।

यह घटना यद्यपि दो शताब्दी पुरानी है तो भी आज के भयंकर परिणामों वाले हमारे प्रदूषित हो रहे पर्यावरण की पुनः सुरक्षा के लिए एक प्रेरणा-स्रोत बनी हुई है। वास्तव में यह पर्यावरण है क्या? जिसके प्रदूषित हो जाने का खतरा हम सब को सता रहा है; जिसके महत्व को आज सम्पूर्ण विश्व भय के कारण सर्वोच्च प्राथमिकता दे रहा है। थोड़े और सरलतम शब्दों में हमारे शरीर से बाहर जैव या अजैव पदार्थों का वह समूह जो हमारे शरीर को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभावित करता है—हमारा पर्यावरण कहलाता है।

सन् 1965 में एडले ई. स्टीवैन्सन, जो अमेरिका के बुद्धिजीवी पत्रकार थे, ने अपने उद्‌गार इन शब्दों के साथ प्रकट किए "हम सब (धरती के निवासी) एक अंतरिक्ष यान में इकट्ठे बैठे हैं और हमारा जीवन इस बात पर निर्भर करता है कि हमें हमारा ये यान कितनी आक्सीजन और कितनी खाद्य सामग्री उपलब्ध करता है।" वास्तव में हमारी धरती ही हमारा पर्यावरण है। पर्यावरण यहां के जीव-जन्तु, खाद्य-पदार्थ, उपलब्ध संसाधन, जल, वायु, सभी कुछ, अपने घेरे में ले लेता है।

भारतीय दर्शन ने पर्यावरण को शायद सबसे अधिक समझा है। तभी तो प्राकृतिक परिवर्तनों द्वारा स्वतः हो जाने वाले परिवर्तनों के हर मूर्त-रूप को श्रद्धा की दृष्टि से प्रारम्भ से ही देखने की प्रेरणा देते रहते हैं। और तो और हमारे यहां प्रातः स्मरण के दूसरे ही श्लोक में धरती को जीवित मां के रूप में अनुभव करके उसे अपना प्रणाम कहा जाता है।

समुद्र वसने देवी, पर्वतास्तन मण्डले,
विष्णु पत्नि नमस्तमम्यम्
पाद-स्पर्शम्-क्षमस्व मैव

अर्थात् हे मां! तेरा निवास समुद्र में भी है; जितने भी पर्वत हैं ये तेरे स्तन मण्डल के रूप हैं, तू साक्षात् विष्णु की पत्नी है। मैं तुझे नमस्कार व प्रणाम करता हूं; हे धरती मां, मैं तुझ पर अपना पांव रख रहा हूं, मुझे क्षमा करना।

उपरोक्त मंत्र, जिसे भारतवर्ष में सदियों से प्रातःकाल में बार-बार पढ़ने की प्रेरणा दी गई है, वास्तव में इस बात को दर्शाता है कि अपने पर्यावरण के प्रति श्रद्धापूर्वक सजग रहने की कितनी आवश्यकता है। यदि हम पांव रखने से भी पहले धरती मां से माफी मांगते हैं तो इसका अर्थ है कि इसे न हम विकृत ही करेंगे और न किसी और के द्वारा भी इसे विकृत किया जाना सहन किया जाएगा। तभी तो इसे मां कह कर पुकारा जाता है।

वर्तमान में पर्यावरण को और अधिक गहराई से समझने के लिए इसे मुख्य दो भागों में बांट लेना आवश्यक होगा। एक मानव का आंतरिक पर्यावरण जो संस्कृति से सम्बंधित है, दूसरा बाह्य पर्यावरण जो हमारी भौतिक व्यवस्था, हमारी सामाजिक परम्पराओं के साथ सीधा सम्बंध रखती है।

बाह्य पर्यावरण को तीन मुख्य भागों में विभाजित कर लें—

1. धरती का सूखा भाग,
2. धरती की घाटी वाला भाग जहां अथाह समुद्र है व
3. इन दोनों से, ऊपर वाला तीसरा भाग जिसे अधिकतर लोग पर्यावरण का मुख्य रूप कहते हैं अर्थात् पृथ्वी को घेरे हुए वायु मण्डल की एक मोटी परत वाला भाग।

इन तीनों भागों में प्रकृति की ओर से एक समीकरण स्थापित है। यदि यह समीकरण बना रहने दिया जाये तब हमारा पर्यावरण कदाचित प्रभावित नहीं होता है। परन्तु यदि इसे

किसी भी प्रकार विखंडित कर दिया जाए तो यह मानव सभ्यता के स्थायित्व पर प्रश्न चिह्न लगा देगा। इन तीनों भागों की मूल रचना के बारे में भी हमारे वैज्ञानिकों ने हमें बताया है कि—कई करोड़ वर्ष पहले सूर्य में किसी कारण एक जोरदार विस्फोट हुआ। जिसके कारण उसका एक टुकड़ा उससे छिटर कर दूर अति दूर होता चला गया। यही हिस्सा हमारी धरती मां है। प्रारम्भ में यह आग का गोला ही थी। धीरे-धीरे ये ठण्डी होती चली गई। धरती के ठण्डे होने की इस प्रक्रिया के कारण इसमें से कई गैसें आग की लपटों के रूप में निकलीं। कालान्तर में इन्हीं गैसों में आक्सीजन और हाईड्रोजन का विशेष अनुपात में संयोजन हुआ व यही लपटें अब भाप के रूप में परिवर्तित होने लगीं। फिर धीरे-धीरे ये भाप ठण्डी हुई और वर्षा के रूप में बरसने लगीं। वैज्ञानिकों के अनुसार सैकड़ों वर्ष तक ये बादल बरसते रहे होंगे। ये पूरा जल धरती के उन भागों पर जाकर इकट्ठा हो गया जो मैगनीशियम, कैल्शियम, लैड (सिक्का) और मरकरी (पारा) के कारण भारी होकर दब गया था व उनके दबने से धरती के दूसरे भाग उठ गए। जिन्हें पर्वतों के रूप में देखा जाता है। धरती का वह भाग जहां समुद्र है समुद्र की घाटी कहलाती है। तभी से क्षेत्रफल की दृष्टि से धरती का 71 प्रतिशत भाग समुद्र की घाटी है। जहां महासागरों का एकछत्र-साम्राज्य है व केवल 29 प्रतिशत भाग ही शुष्क भू-भाग है। जहां मानव सभ्यता का विकास है।

समुद्र के जल को जीव रसायन-शास्त्री रंगहीन रक्त की संज्ञा देते हैं। क्योंकि रक्त की भांति इसमें प्रोटीन, एमीनो एसिड, कार्बोहाइड्रेड हार्मोन्स व घुली हुई गैसों के जलीय विलियन उपस्थित रहते हैं। इतना ही नहीं समुद्र तल में एक गर्भवती स्त्री के समान ही शिशु आहार के सभी तत्व उपस्थित रहते हैं। समुद्र को जैव पदार्थों का भण्डार माना जाता है।

कोचीन विश्व विद्यालय के डॉ. सत्य नारायण के अनुसार समुद्र एक ऐसी अविरल रासायनिक प्रक्रिया है जिसे हर समय एक क्रियाशील घाटी के रूप में देखा जा सकता है। इसी कारण समुद्र में होने वाली क्रियाएं जीवन-चक्र के समान ही निरन्तर होती रहती हैं।

इस प्रकार समुद्र, धरती का विस्तार व इस ग्रह के शेष प्रभाव क्षेत्र हैं जहां वायु (सभी गैसों का मिश्रण) उपस्थित रहती है। इसे पर्यावरण कहते हैं।

हमें इस बात को सदा याद रखना चाहिए कि पहली सभ्यताओं ने भी और आज के वैज्ञानिक भी हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करते रहते हैं कि प्रकृति अपना स्वरूप स्वत: बदलती रहती है और इसके परिवर्तन की इस प्रक्रिया में पर्यावरण का संतुलन कभी नहीं बिगड़ता।

धरती पर जीवन मुख्य तौर से सूर्य पर निर्भर करता है। जैव पदार्थों को जीवित रहने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और हमारे लिए ऊर्जा का मुख्य स्रोत है सूर्य। सूर्य की ऊर्जा धरती पर पेड़ों (वनस्पति) के द्वारा; गर्मी के कारण समुद्रों और नदियों को भाप बनाकर बादल बनाना और फिर पुनः उसे खेतों में वर्षा के रूप में बरसा देने के कारण व अपनी चुम्बकीय शक्ति के द्वारा हमारे वायुमण्डल में से कीटाणुओं का विनाश कर हमारे वातावरण को शुद्ध करने के रूप में प्रयोग हो रही है। एक अनुमान के अनुसार केवल भारत वर्ष में ही 200 करोड़ क्यूसिक आग जलाने की लकड़ी है जो लगभग शेष ऊर्जा साधनों, गैस, कोयला, तेल एवं बिजली का चार गुणा है।

वास्तव में वनस्पति पृथ्वी पर आक्सीजन प्रदान करने वाला व मनुष्यों द्वारा छोड़ी गई कार्बन-डाई-आक्साइड को हरने वाला एक मात्र साधन है। सूर्य से आ रही 676 कि. कैलोरी (उष्मा की इकाई) लेकर पेड़ के पत्तों में उपस्थित क्लोरोफिल (पत्तियों में उपस्थित हरा पदार्थ) पृथ्वी से जड़ द्वारा लिया गया जल व कार्बन-डाई-आक्साइड को शक्कर ग्लूकोज में बदल देता है व इस क्रिया में आक्सीजन स्वतः निकलती रहती है। यही आक्सीजन मानवों के सांस लेने के काम आती है जिससे उसका जीवन-चक्र चलता रहता है। इस क्रिया को वैज्ञानिक भाषा में फोटो सिन्थेसिस या प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया कहते हैं।

भू-गर्भ शास्त्रियों ने कहा है—एक हैक्टेयर के हरे-भरे जंगलों के वृक्ष 600 से 650 किलो ग्राम आक्सीजन 18 घंटों के अन्दर ही हवा में छोड़ते हैं। इसके बदले में वायु मण्डल से 900 कि. ग्राम कार्बन-डाई-आक्साईड गैस ले लेते हैं। जिसके फलस्वरूप हमारा वायु मण्डल साफ हो जाता है। वृक्षों के पत्ते धरती पर गिरते हैं और वे उसमें 'ह्यूमस' पैदा करते हैं जो हमारी धरती को पौष्टिक तत्व प्रदान करके उसको और अधिक उपजाऊ बनाते हैं। जो कोयला हम आज प्रयोग में ला रहे हैं वह भी इन्हीं पेड़ों का लाखों-करोड़ों वर्षों से भूमि में दबे रहने के कारण धीमी-सुलगती क्रियाओं का ही फल है।

वृक्ष वायु में अपनी पत्तियों के द्वारा जल भी छोड़ते रहते हैं। उनके इसी जल विर्सजन की क्रिया के कारण ही बहुत अधिक गर्मी में भी वृक्ष सूखते भी नहीं बल्कि उलटे अपने नीचे बैठने वाले लोगों को ठण्ड भी पहुंचाते रहते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पीपल का पेड़ विश्व में सर्वाधिक आक्सीजन विसर्जित करता है और उसके बाद 'बड़' वृक्ष। शायद यही कारण रहा होगा भारतीय ऋषियों द्वारा इन दोनों वृक्षों की पूजा तक करवाने लगे। तुलसी का पौधा, आक्सीजन देने के अलावा एक विशेषता यह भी लिए हुए है कि ये मलेरिया पैरासाईटस

(कीटाणुओं) को तथा मौसम परिवर्तन होने पर स्वत: पैदा हो जाने वाले, मानव के लिए घातक विषाणुओं को नष्ट कर देता है। मोटी इलायची 'ऐंटी एलर्जिक' है तो नीम की पत्तियां रक्त-साफ करने के लिए विशेषता लिए हुए है। हमारे वेद तो वनस्पति को मानते ही औषधियां हैं। जो किसी न किसी रूप में मानव के लिए उपयोगी तो हैं ही पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखने के लिए भी मुख्य भूमिका निभाते हैं।

अकेले भारतवर्ष में ही 750 लाख हैक्टेयर क्षेत्र वन हैं। अर्थात् कुल भूमि के 22% भाग पर वनों की अनेक प्रजातियां पाई जाती हैं। आदिवासियों सहित यहां लगभग 1000 लाख लोग वनों में और वनों के आसपास रहते हैं। वनों से इन्हें इनके खाने-पीने की आवश्यकताओं, जल, पशुओं के लिए चारा, ईंधन, कृषि औजारों तथा मकान बनाने के लिए इमारती लकड़ी एवं चिकित्सा के लिए जड़ी-बूटियां नि:शुल्क उपलब्ध होती हैं। परन्तु अब उनकी अपनी जनसंख्या की वृद्धि के कारण, पशुधन की वृद्धि के कारण तथा बढ़ती प्रौद्योगिकी के कारण शहरों व गांवों में भी कागज बनाने, फलों आदि को पैक करने व इमारती लकड़ी की खपत के कारण वनों की लगातार कटाई हो रही है। जिसके कारण वहां के लोगों का जीवन तो अस्त-व्यस्त होता ही है बल्कि पर्यावरण असंतुलन भी बढ़ रहा है।

याद रहे प्रकृति का यही असंतुलन जिसके भी कारण होता है उसे ही प्रदूषण कहते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रकृति के किसी भी भाग में कोई विशेष पदार्थ की मात्रा निर्धारित स्तर से अधिक हो जाना प्रदूषण कहलाता है।

एक सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार 1972 से 1982 के दौरान वन क्षेत्रों में लगभग 19% की कमी आई है। उपग्रह के द्वारा लिए गए रिमोट सोसिंक सर्वेक्षणों से भी यह तथ्य सामने आए हैं कि अब केवल 11% क्षेत्र में ही सघन वन हैं और शेष क्षेत्र वनों से अब उतना आच्छादित नहीं रहा। वनों की द्रुत गति से की जा रही कटाई के फलस्वरूप धरती में जल को पकड़ पाने की क्षमता समाप्त हो जाती है। वन धरती को ठोस बनाते हैं। उन्हीं के कारण धरती की ऊपरी पर्त हल्की नहीं रहती। इसलिए वर्षा ऋतु में जल को चूस कर अपने नीचे स्थान दे देती है जिसके कारण थोड़ी-सी गहराई पर ही पीने का जल कुओं के रूप में उपलब्ध हो जाता है परन्तु वनों की कटाई के कारण वहां की धरती को ही पानी अपने साथ बहा ले जाता है। इसलिए सूखे तक की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

भारत सरकार ने इस समस्या को समझ-बूझ लिया व विशेष अधिनियम द्वारा इस योजनाबद्ध कर कार्यान्वित किया। उसके अनुसार वर्ष 1950 से 84 तक कुल वन्यारोपण 820 लाख हैक्टेयर हुआ। 1985 के बाद पहले तीन वर्षों में 50 लाख हैक्टेयर और 1990 से पहले अन्य 50 लाख हैक्टेयर क्षेत्र पर वन्यारोपण हो गया। इसके अतिरिक्त यदि समस्त देशवासी इस ओर स्वच्छमन तथा दृढ़ता से ध्यान दें और 'एक व्यक्ति एक पेड़' का कार्यक्रम चलाएं तो बहुत शीघ्र ही भारतवर्ष की समस्त भूमि खेती योग्य व हरी-भरी हो जाएगी तब फिर पर्यावरण के असंतुलन का कोई अन्तर नहीं पड़ेगा क्योंकि वह होगा ही नहीं।

जैवकीय विविधता

भारतवर्ष में ही सबसे अधिक जैवकीय विविधता है। इसमें पशुओं की लगभग 75,000 और पौधों की 45,000 प्रजातियां हैं, बिना रीढ़ की हड्डी वाले जीवों के अतिरिक्त पशुओं की 340, व पक्षियों की 2,100, सरिसृप की 420, उभयचर जन्तुओं की 120, मछलियों की 2,000 मोलस्क की 400 और कीड़े-मकोड़ों की 5,000 प्रजातियां हैं। वनस्पति जगत की 15,000 प्रजातियां हैं तथा पुष्पी-पौधों की 15,000 प्रजातियां हैं।

इन जैवीय विविधता को सुरक्षित रखने के लिए देश में विशेष काम किए जा रहे हैं। देश का 4% भू-भाग राष्ट्रीय पौधों तथा अभ्यारणों के रूप में घोषित कर दिया गया है। भारत के अधिकतर वन्य-जीव विभिन्न भागों में स्थित 63 राष्ट्रीय उद्यानों और 358 अभ्यारणों में पल रहे हैं। इनके अतिरिक्त 13 जीव-मण्डल स्थापित किए जाने की योजना भी बना ली गई है जहां दुर्लभ जीवों को सुरक्षित रखा जाएगा व उनकी जाति को लुप्त होने से बचाया जाएगा। अब तक जो उद्यान व अभ्यारण स्थापित किए जा चुके हैं वे हैं कार्बेट पार्क, कान्हा राष्ट्रीय उद्यान, इन्द्रवती राष्ट्रीय उद्यान, रणथम्भौर उद्यान, सरसिका उद्यान, भोलाघाट अभ्यारण, पोलामऊ बांध परियोजना, उत्तर सिमलीपल राष्ट्रीय उद्यान, बक्सा अभ्यारण, सुन्दरबन राष्ट्रीय उद्यान, मानस अभ्यारण, नामदफा राष्ट्रीय उद्यान, नागार्जुन सागर, श्री प्रेलम अभ्यारण, बांधीपुर राष्ट्रीय उद्यान, पैरियान राष्ट्रीय उद्यान व दूधवा राष्ट्रीय उद्यान हैं। ये कुल मिलाकर 16 हैं। जिनके द्वारा प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने का भरपूर प्रयास किए जाने की योजनाएं बनाई गई हैं।

वनों और जैव पदार्थों के अतिरिक्त मानव का क्रमिक विकास भी पर्यावरण के संतुलन के आड़े आता है। जहां जनसंख्या वृद्धि होती है वहीं मानव का जीवन स्तर भी बढ़ता है। आज जहां जनसंख्या वृद्धि व जीवन स्तर के सुधार का विश्लेषण किया जाता है तो पाया यही जाता है कि जल प्रदूषण में वृद्धि हो रही है। घरों में चलाए जा रहे फ्रीज व वातानुकूलित

यंत्रों व इनसे भी अधिक ग्रीन हाऊस इफैक्ट जैसे कार्बन-मोनो आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड व क्लोरोफ्लोरो कार्बन जैसी अति गर्म व जहरीली गैसें निकल रही हैं व लगातार हमारे इस वायु मण्डल में मिल रही हैं।

एक बात और विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि सूर्य में हीलियम गैस व हाइड्रोजन गैस के लगातार विखंडन के कारण उष्मा पैदा होती है। परन्तु कभी-कभी उस पर उपस्थित काले धब्बे इन विखंडनों को बहुत उग्र बना देते हैं। जिसके कारण तापमान में एकदम असाधारण परिवर्तन होता है। तापमान बढ़ जाता है। वास्तव में सूर्य पर ही स्वतः होने वाले परिवर्तनों को दो भागों में बांटा गया है। एक चक्र 11 वर्ष बाद व दूसरा बड़ा चक्र 83 वर्ष बाद पूरा होता है। जब भी ये चक्र पूरे होते हैं उस वर्ष धरती का तापक्रम अपनी चरम सीमा पर होता है। 83 वर्ष वाला बड़ा चक्र सन् 2031 में पूरा होने वाला है तब धरती का तापमान अपनी चरम सीमा पर होगा ऐसा वैज्ञानिकों का मत है।

विचारणीय बात यह है कि निरन्तर बढ़ रही है क्लोरोफ्लोरो कार्बन की मात्रा ने पिछली शताब्दी में धरती का तापमान 1°C बढ़ा दिया है। अनुमान है कि सन् 2013 तक यह तापमान 4°C तक बढ़ जाएगा। तब उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर जमी बर्फ पिघल जाएगी। उसके कारण समुद्र जल बढ़ जाएगा। तब धरती का बहुत-सा भाग समुद्र में ही समा जाएगा। फिर हो सकता है कभी अविरल वर्षा हो। कई दिनों तक सूर्य दिखाई ही न दे उसके कारण फिर भयानक सर्दी पड़ जाए। तब मानव जीवन ही समाप्त हो जाए। इस प्रकार हमारा यह पर्यावरण छिन्न-भिन्न हो जाए।

इसलिए आज आवश्यकता है अपने पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त करने की। जहां सरकारी व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व के सभी बुद्धिजीवी लोग इस समस्या से जूझ रहे हैं वहीं हमारा आपका भी यह कर्तव्य बन जाता है कि हम भी व्यक्तिगत तौर पर इस कठिनतम संकट को दूर करने की दिशा में कुछ कदम उठाएं ताकि, सामाजिक तौर पर भी हम भविष्य के लिए कुछ बचाकर रख सकें।

गांवों की सभ्यता का बचाना इस दिशा में विशेष प्रयास होगा।

व्यक्तिगत तौर पर अपनाए जाने वाले सुझाव

- कहीं हम बहुत तेज आवाज में तो नहीं बोलते, रेडियो, टी.वी. लाउड स्पीकरों की ध्वनि, अपने वाहनों की ध्वनि अपने तक ही सीमित रखते हैं न। इससे ध्वनि प्रदूषण रुकेगा। अन्यथा बहरेपन का रोग हम अपने व दूसरों के लिए लगा रहे हैं।
- अपने वाहनों का निरीक्षण ठीक से करवा लेते हैं न! इसे ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण व हमारे अपने वाहन की बर्बादी रुकेगी।
- हम खाद्य-पदार्थों व जल संसाधनों का प्रयोग केवल बहुत आवश्यक तौर पर ही करते हैं न! इससे वितरण ठीक व उचित हो पाएगा। अन्यथा असमानता बढ़ेगी।
- हम अपने ही शरीर में आसनों द्वारा विशेष प्रतिरोधक-शक्ति पैदा कर रहे हैं जो हमें फ्रीज व वातानुकूलित उपकरणों के बिना भी जीने की आदत डाल सके। इससे हम वातावरण में कार्बन-मोनो-आक्साइड सल्फर-डाई-आक्साइड व क्लौरोफ्लोरा कार्बन जैसी घातक गैसों की मात्रा का नियंत्रित कर सके। इससे ओजोन पर्त मजबूत रहेगी।
- क्या हम प्रति व्यक्ति एक पेड़ लगाने की प्रेरणा सभी को दे रहे हैं व स्वयं भी यह कार्य कर रहे हैं। इससे पर्यावरण को शुद्ध करने में सबसे अधिक सहायता मिलेगी।
- क्या हम वे सभी प्रयास कर रहे हैं जिनके द्वारा अंतर्मन भी निर्मल रहता है।

यदि हम ये सब नहीं कर रहे हैं तो वचन लें कि ये सब अब सही करेंगे। तभी आने वाला भविष्य हमारा, आपका व हमारी भावी पीढ़ी का मनोरम भविष्य साबित होगा। अन्यथा हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों का गला घोंटने के कारण नरक ही मिलेगा।

एस.एस.के. खालसा स्कूल, दरियागंज

नई दिल्ली-110002

पर्यावरण को जोखिम की ललकार

ब्रजलाल उनियाल

एक जमाना था जब शहरी आदमी बीमार पड़ता या बीमारी के बाद कमजोर नजर आता तो इसके हितचिन्तक कहते, "भले मानुष, अब गांव में जाओ, वहीं की ताज़ी हवा, शुद्ध वातावरण और शुद्ध घी-दूध ही तुम्हें तंदुरुस्त बनाएंगे।" पर आज तो हालत उल्टी हो गयी है, शहर में तो है ही प्रदूषण, पर अब गांव भी प्रदूषण से मुक्त नहीं हैं। गांवों के भूषण थे पेड़-पौधे जिन्हें आदमी के लालच ने लगातार निशाना बनाया। गांवों में भी हवा दूषित हो रही है, पानी दूषित हो रहा है, अन्न तक प्रदूषण की चपेट में आ गया। और मजेदार बात यह है कि बेचारा गरीब ही प्रदूषण का सबसे बड़ा शिकार है। जब दूषित जल से होने वाली बीमारी फैलती है तो सबसे पहले गरीब ही उसकी चपेट में आता है। एक तो वे लोग अज्ञान के कारण और दूसरे निर्धनता के कारण स्वच्छ जल के महत्व को नहीं समझते और साधनहीन होने से इलाज से भी महरूम रह जाते हैं।

विज्ञान ने आदमी को चांद पर पहुंचा दिया, उसने समुद्र की अतल गहराइयां नाप डालीं और अकल्पनीय क्षेत्रों तक को रौंद डाला। दुनिया को सुन्दर और सुख सम्पन्न बना डाला। पर कैसी विडम्बना है कि जिस मनुष्य के लिए यह सब कुछ किया जा रहा है। उसका जीवन दूभर हो रहा है। वातावरण दिन-ब-दिन दम घोंटू बन रहा है, विशेष रूप से गांव के गरीब को तो दोहरी मार पड़ रही है।

हवा, जल, ध्वनि और अन्न के प्रदूषण से आए दिन दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं। कुछ वर्ष पहले अमेरिका में कुछ आंकड़े इकट्ठे किए गए थे, जिससे पता चलता है कि इन प्रदूषणों के फलस्वरूप 100 में से 97 व्यक्ति किसी-न-किसी छोटी-बड़ी व्याधि के चंगुल में हैं। यहां तक पता चला है कि ब्रिटेन व अमेरिका में लोगों का आइ.क्यू. बराबर गिर रहा है।

हवा का प्रदूषण

यद्यपि हर तरह के प्रदूषण से इन्सान को खतरा पैदा हो गया है, पर सबसे गंभीर खतरा, कम-से-कम भारत में, जंगलों के बेरहमी से काटे जाने से है। पूरा हिमालय शहरी और औद्योगिक सभ्यता की मार से कराह रहा है। पहाड़ गंजे हो रहे हैं। पेड़ों की पत्तियों में क्लोरोफिल (पूर्ण हरीतिका) नाम का पदार्थ होता है, जिससे वह सूर्य की रोशनी की मदद से कार्बन-डाइ-आक्साइड का उपयोग करता है और आक्सीजन तैयार करता है। कार्बोहाइड्रेट पेड़ में रह जाता है और आक्सीजन यानी प्राण-वायु वायुमंडल में छोड़ता है। वनस्पति और प्राणियों की जीवन प्रक्रिया में अंतर है। वनस्पति वायुमंडल से जहरीली कार्बन-डाइ-आक्साइड का उपयोग कर आक्सीजन को वायुमंडल में लौटाती है, जबकि मनुष्य और प्राणी आक्सीजन का उपयोग कर जहरीली वायु बाहर छोड़ते हैं। जाहिर है कि वायुमंडल को स्वच्छ बनाने के लिए वनस्पति का स्थान दूसरी चीज ले ही नहीं सकती। आज उद्योग और नगरीकरण का कुल्हाड़ा इसी प्राणदायिनी वनस्पति पर पड़ रहा है। हम कुदरत के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं और सोचते हैं कि स्वस्थ बने रहें। जंगलों के अंधाधुंध कटाव से मिट्टी का कटाव होता है। कटाव से नदियों में बाढ़ें आती हैं, जलाशयों में तलछट जमा होती है। इस प्रकार वनस्पति के कटाव से भारी क्षति होती है।

गांव भी जागरूक

अब भारत में भी वनस्पति के साथ इस बेरहमी के बरताव के प्रति जागरुकता आ रही है। यों तो वृक्ष-पुरुष कहे जाने वाले श्री रिचर्ड बार्वे बेकर ने जंगलों की कटाई के विरुद्ध भारी चेतावनी दी है और दुनियाभर में वृक्षों के प्रति सहृदयता का भाव जगाया है, पर भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। 'हिमालय के गांवों में' विश्व-प्रसिद्ध 'चिपको आंदोलन' चला था, जिसमें वहां की ग्रामीण महिलाओं ने वृक्षों से चिपक कर ठेकेदारों को पेड़ काटने से रोक दिया।

विकासशील देशों में गांव के लोग वनस्पति के इस विध्वंस से बहुत दुखी हैं। जब गांव के जोहड़ और कुएं सूख जाते हैं तो गरीब ही दूर-दूर के स्रोतों से पानी लाते हैं। कोई-कोई निर्धन तो मजबूरियों से गंदा पानी तक पीते हैं और पीलिया आदि अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। वनों के नष्ट होने से मवेशियों को भी भारी कष्ट होता है। उन्हें दाना-चारा की समस्या के अलावा पानी की समस्या से भी जूझना पड़ता है।

बताया जाता है कि हवा का प्रदूषण टोकियो, लंदन, शिकागो आदि स्थानों में तो बहुत बड़ी चिन्ता का विषय बन गया है। अब दिल्ली की हालत भी बदतर होती जा रही है। दिल्ली की गणना भी अब दुनिया के सबसे अधिक प्रदूषण वाले नगरों में की जाने लगी है। शुक्र है कि गांवों में भारी मशीनें, धुवां छोड़ने वाले वाहन आदि इतनी भारी मात्रा में नहीं पहुंचे हैं कि ये खतरे की सीमा को छू लें। पर अगर आदमी की लिप्सा ऐसी ही रही तो यहां के गांव भी प्रदूषण की चपेट में आ सकते हैं।

जल का प्रदूषण

जिस गंगा को हम सदा से पवित्र जल वाली पतित पावनी मानते हैं, आज लोगों ने उसमें इतना मैला विसर्जित कर दिया है कि उसके पानी तक में विकार उत्पन्न हो गया है। भारत सरकार इस दिशा में सचेष्ट है और गंगा व यमुना की शुद्धता के लिए करोड़ों रुपये योजनाओं पर खर्च कर रही है। समुद्र तक में प्रदूषण फैल रहा है, जिसका कारण खनिज तेल है। हाल ही में जो इराक के साथ युद्ध हुआ, उसमें चाहे उत्तरदायी कोई भी हो, समुद्र का भारी प्रदूषण हुआ है, जिससे प्रकृति का संतुलन गड़बड़ा गया है। आकाश में प्रदूषण भरे धुएं के बादलों ने वैज्ञानिकों को एक अबूझ चुनौती दे डाली है।

हमारे गांवों में मल-मूत्र विसर्जन का पुराना तरीका है। उसके बारे में हमें गंभीरता से सोचना होगा। चीन में तो बहुत पहले से ही मल को खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। हमारे देश में गांधीजी ने लोगों का ध्यान इस दिशा में खींचा था। उसी प्रेरणा से प्रेरित होकर शुलभ शौचालय तैयार किए गए थे।

खेती में रासायनिक दवाओं का प्रयोग

खेतों में कीटनाशी दवाओं के रूप में रासायनिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है। हम विदेशों की अंधाधुंध नकल कर रहे हैं। हमारे देश में प्रकृति ने भरपूर ऊर्जा दी है, जिसका युक्तिसंगत उपयोग किया जाना चाहिए। हमारे कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान अब सौर ऊर्जा की ओर गया है। उन्होंने रासायनिक कीटनाशी दवाओं के बारे में भी अब गंभीरता से चिन्तन शुरू कर दिया है और बताया है कि यद्यपि सुधरी तकनीकों व रासायनिक दवाओं से उपज जरूर बढ़ी है, पर इसके दूरगामी परिणामों को देखते हुए वे इनका विकल्प देने में कार्यरत हैं।

मिट्टी पर कई तरीकों से कीटनाशी दवाओं का असर पड़ता है। एक तो मिट्टी में पहुंचकर ये दवाएं मिट्टी का संतुलन बिगाड़ देती हैं। पक्षियों पर इनका दुष्प्रभाव पड़ता है। यहां तक कि पदार्थों के स्वाद में भी नयी-नयी विकृति आ जाती है।

तब फिर क्या करें?

जब हालत ऐसी नाजुक है तो क्या किया जाए? पर्यावरण की रक्षा न करना भावी संतति को विनाश के हवाले कर देना है। अतः जरूरत इस बात की है कि हम इसके प्रति सचेष्ट हो जाएं।

इस बात को सुनिश्चित किया जाए कि व्यापारी और उद्योगपति पेड़ों की अंधाधुंध कटाई न कर पाएं और अगर पेड़ काटे जाने जरूरी हों तो काटे जाने वाले पेड़ों की संख्या से दुगने पेड़ कानूनन लगवाए जाएं। भले ही यह व्यवस्था जटिल है पर है आवश्यक।

हाल ही में हुए ऊर्जा संकट ने वृक्षारोपण के महत्व को बढ़ा दिया है। अब ऐसे ऊर्जा के स्रोत विकसित किए जाएं, जिनका पुनरुपयोग किया जा सके, सिर्फ कोयले व ईंधन पर निर्भर न रहें। सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम को गांवों में बढ़ावा दिया जाए। आवासीय स्थानों के आसपास पेड़ उगाए जाएं। इसका उद्देश्य गांव वालों की ईंधन की जरूरत को पूरा करना है। उपलों को न जलाया जाए बल्कि गोबर गैस का इस्तेमाल करने वाले चूल्हे अपनाए जाएं।

ईंधन के लिए विशेष पेड़ लगाए जाएं। स्कूलों, निजी संस्थानों या सार्वजनिक भवनों आदि में पेड़ लगाने को प्रोत्साहित किया जाए। सड़कों के दोनों ओर, रेल की पटरियों के पास, नहरों के किनारों, खेत की मेड़ों पर वृक्षारोपण का व्यापक अभियान शुरू किया जाए। यह संतोष का विषय है कि स्कूलों में इसे काफी प्रोत्साहन मिला है। यह उल्लेखनीय है कि एशिया में चीन पहला देश था, जिसने स्कूलों में वृक्षारोपण को अनिवार्य विषय बनाया था। आस्ट्रेलिया में भी इस अभियान ने जोर पकड़ा है।

परती भूमि को भी वृक्षारोपण के अन्तर्गत लिया जाए। बेकार, खारी व कल्लर भूमि का सुधार कर वहां विशेष प्रकार के पेड़ लगाए जाएं, बशर्ते कि वहां खेती न की जा सके।

मरुस्थल के लिए खेजड़ी जैसा वृक्ष बहुत उपयोगी रहा है। इसका संबंध राजस्थान की संस्कृति से है। इसका उल्लेख अथर्वेद में भी आया है। इसे मरुस्थल का कल्पवृक्ष कहा जाता है। इसे वन-चारागाह के लिए आदर्श माना जाता है।

एक बार कविवर रवीन्द्र ने कहा था कि भारत की संस्कृति 'अरण्य संस्कृति' थी, जहां तपोवन थे, लोग वृक्षों की पूजा करते थे, जनहित के लिए सड़कों के किनारों पर वृक्ष लगाए जाते थे। उसी भावना को पुनः जागृत किया जाए। तब पुरुष और प्रकृति में सामंजस्य था। भूदृश्य बागवानी को विकसित किया जाए।

प्रेरक व्यक्तित्व

यहां यह कहना प्रासंगिक होगा कि पूना के पास उर्लीकांचन स्थान पर गांधीजी काफी समय तक रहे। वनवासियों द्वारा अधिक लाभ के लिए उजाड़े गए वनों से युक्त पहाड़ों को देखकर वे दुखी मन से कहने लगे, "काश! इन पहाड़ों की सुन्दरता को फिर लौटाया जा सकता, तो यह स्थल ऐसा भयावह न लगता।" उनकी यह बात उनके शिष्य मणिभाई देसाई को चुभ गयी और उन्होंने अकेले ही इस अभियान को शुरू किया। अब वहां बड़ा घना और खूबसूरत जंगल है। वहां की जलवायु भी बड़ी स्वास्थ्यवर्धक है।

अंत में हम प्रसिद्ध समाज सेविका, गांधीजी की प्रिय शिष्या स्व. सरला बहन के इन शब्दों को उद्धृत करना चाहेंगे। "प्रकृति के विकास में अरबों-खरबों वर्ष लगे हैं, किन्तु मनुष्य जिस तेजी से प्राकृतिक सम्पदा को नष्ट कर रहा है, उससे विनाश अवश्यंभावी है। इन सब के संरक्षण के लिए हमें प्रयत्नशील होना होगा। हवा, जल, पेड़-पौधे, कीटाणु, पशु-पक्षी और मानव सभी विराट योजना के अंग हैं। इन सभी का अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर करता है। इन सब को अलग-अलग इकाई मानना एक भयंकर भूल होगी। इन सब के बीच समुचित संतुलन की अपेक्षा है।" आइए, इस संतुलन के लिए पर्यावरण की रक्षा के प्रति हम कार्यरत हों।

के-38 एफ, साकेत,
नई दिल्ली-110017.

लेखकों के लिए जानकारी

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया इन बातों का ध्यान रखें :

- रचना संक्षिप्त एवं उसकी प्रस्तुति रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध कराई गई जानकारी अप्रकाशित और मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न होना चाहिए।
- रचना के विषय ग्रामीण विकास से सम्बन्धित होने चाहिए।
- रचना डबल स्पेस में टाईप की हुई या स्वच्छ अक्षरों में लिखी हो जो आठ पृष्ठ से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- रचना की दो प्रतियां भेजना अपेक्षित है।
- रचना में विशिष्ट तकनीकी शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। जहां उनका प्रयोग अपरिहार्य हो वहां ऐसी सरल शैली का प्रयोग किया जाए जिससे उनका अर्थ पाठक को स्पष्ट हो जाए।
- रचना के संगत चित्रों, रेखाचित्रों आदि का प्रयोग इस प्रकार से किया जाए कि वह सामान्य पाठकों की समझ आ जाए।
- अस्पष्ट लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे।
- लेख छपने पर अंक अविलम्ब भेजा जाता है, इस विषय में पत्र व्यवहार न करें।

पर्यावरण में घुलता धीमा जहर

हनुमान सिंह पवार

यह एक खूबसूरत शहर था। योजनाबद्ध बनावट, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, साफ-सुथरी बस्तियां, चारों ओर फैले बड़े-बड़े भवन, स्कूल, स्टेडियम, अस्पताल, कार्यालय, स्टेशन, एयरपोर्ट, तरह-तरह के मनोरम डिजाइनों वाले बाजार, सामुदायिक केन्द्र, विशाल कारखाने, टी.वी. टावर, पावर हाऊस और इनके सबके बीच नई-पुरानी सभ्यता की कहानी कहते स्मारक।

एक क्षण पहले इस आधुनिक शहर में हंसी थी, उल्लास था, कोलाहल था, चहल-पहल थी कि अचानक एक हादसा हुआ। एक ऐसा वज्रपात कि सारी मानवता चीत्कार कर उठी। इसी शहर के एक बड़े कारखाने से एक जहरीली गैस मानवीय लापरवाही अथवा यांत्रिक त्रुटि से रिस पड़ी। देखते-ही-देखते गैस हवा में घुलने लगी और चारों ओर फैलने लगी। शहर के लोगों को लगा, जैसे उनका गला घोंटा जा रहा हो। वे बार-बार सांस लेने की कोशिश करते, पर ले नहीं पाते। बदहवास वे इधर-उधर दौड़ने लगे। उन्हें पता नहीं था कि किधर दौड़ें और कहां तक दौड़ें। जब तक दम में दम था दौड़े और बाद में एक-एक कर सड़कों पर गिरने लगे। देखते-ही-देखते गलियों में, मुहल्लों में, घरों में, दफ्तरों में लाशों का अम्बार लग गया। न कहीं बाढ़ आई, न भूकंप आया, न कहीं आग लगी, न गोलियां चलीं, पर मौत की एक आंधी ऐसी आई कि हजारों निर्दोष प्राणियों को काल कलवित कर गई।

उपर्युक्त दुर्घटना अचानक घटी थी। हजारों लोग कुछ ही क्षणों में काल का ग्रास बन गए थे। दुनियाभर के अखबार काली स्याही से रंग गये थे। इसलिए स्वाभाविक ही था कि लोग इससे चिंतित होते। लेकिन इसी तरह की सैकड़ों तरह की गैसें और घातक रासायनिक तत्व, जो नित्य प्रति जल, थल और वायु में धीमे जहर (स्लो पॉयजन) के रूप में घोले जा रहे हैं, क्या उनकी ओर भी किसी को इतनी ही चिन्ता है? ये गैसें और अन्य तत्व हमारे अपने स्वास्थ्य पर, मिट्टी पर, जल पर, खाद्य पदार्थों आदि पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में भयानक प्रभाव छोड़ रहे हैं, जिनके फलस्वरूप पता नहीं कितने ही लोग रोजाना भयंकर बीमारियों से ग्रस्त हो रहे हैं और असामयिक एवं पीड़ाजनक मौत के मुंह में जा रहे हैं। आज विश्व भर का पर्यावरण इनसे प्रदूषित हो गया है और पर्यावरण को सुरक्षित और शुद्ध रख पाना मुश्किल हो गया है।

पर्यावरण का दोहन तो सब कर रहे हैं लेकिन इसे बचाने के नाम पर बहुत कम प्रयत्न हो रहे हैं। पहले इसकी स्थिति इतनी शोचनीय नहीं थी। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। घने जंगल थे, जंगलों में किलोल करते वन्य जीव जन्तु थे, स्वच्छ सरोवर, मनोहर झरने और अमृतमयी सरिताएं बह रही थीं, शीतल मंद सुगंध चारों ओर व्याप्त थी, आकाश निर्मल था, वायु जहरीली गैसों से मुक्त थी, शोर कोई समस्या नहीं था, धुएं के काले बादल नहीं थे, थोड़ा-बहुत प्रदूषण था भी तो वह महत्वहीन था। इसके विपरीत आज चारों ओर पर्यावरण को खतरा ही खतरा है, जो निरंतर बढ़ता जा रहा है। जल दूषित हुआ जा रहा है, वायु में घातक गैसें उपस्थित हैं, बादल अम्ल बरसाने लगे हैं, धरती धुआं उगल रही है, वनस्पतियां और वन्य जीव जन्तु सीमित हो रहे हैं, इनकी अनेक प्रजातियां तो समाप्त हो गई हैं, खाद्य पदार्थ शुद्ध नहीं रहे। सोना उपजाने वाली मिट्टी भी प्रदूषण की गिरफ्त में है, मरुस्थल बढ़ते जा रहे हैं और तो और धरती के कवच ओजोन परत में भी छेद होने लगे हैं।

हजारों-लाखों वर्ष से चले आ रहे पर्यावरण को इस सदी में ही अधिक क्षति हुई। इसके कई कारण हैं, जिनमें सबसे प्रमुख है—औद्योगिकीकरण और बढ़ती हुई जनसंख्या। पर्यावरण टिका है प्राकृतिक साधनों पर और प्राकृतिक साधनों का उपयोग विभिन्न देश अपने मुख्य आर्थिक आधार के लिए करते हैं अथवा उसे विकास का साधन मानते हैं। जैसे खाड़ी देशों में खनिज तेल उनकी आय का मुख्य स्रोत है तो अन्य देशों में वनों, खनिज सम्पदा और अन्य प्राकृतिक स्रोतों का दोहन विकास के लिए किया जा रहा है। जितनी क्षमता प्रकृति के पास है, उससे कहीं अधिक का दोहन हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक स्थिति, विकसित राष्ट्रों की लालच भरी दृष्टि, विकासशील देशों की अज्ञानता, अशिक्षा, भुखमरी और बढ़ती जनसंख्या, संसाधनों की कमी आदि ऐसे कारक हैं, जिनसे प्रकृति की उपेक्षा हुई और पर्यावरण की क्षति।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1972 में प्रस्ताव पास किया और दुनिया भर के राष्ट्रों को पर्यावरण संकट के प्रति आगाह किया। भारत सरकार ने इसे गंभीरता से लिया। वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगाई गई, वन्य जीवों के लिए अभयारण्य बनाए गए, पर्यावरण मंत्रालय बनाया गया और तत्संबंधी कानून बने। बड़े पैमाने पर वनरोपण और वृक्षारोपण कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। जल, वायु, मृदा आदि को और प्रदूषित न होने देने के लिए प्रयत्न किए गए। लेकिन इन सबके बावजूद स्थिति में किसी विशेष सुधार के लक्षण नहीं दिखे हैं। इसका कारण स्पष्ट है। समस्या हाथी की तरह विशाल है और प्रयत्न चूहे के आकार के हुए हैं। साथ ही जितने हुए वे कागजी अधिक वास्तविक कम हुए।

वायु में घुलता जहर

जीवित रहने के लिए वायु की लगातार उपलब्धता परमावश्यक है। यही नहीं, जो वायु हम श्वास द्वारा ग्रहण करते हैं उसका शुद्ध होना भी उतना ही जरूरी है। एक दिन में एक वयस्क व्यक्ति लगभग 13 किलो वायु ग्रहण करता है। प्रकृति की नियामत है कि इतनी अनमोल वायु बिना किसी प्रयास के और बिना शुल्क के निरंतर मिलती रहती है। आदमी आहार के बिना 5 सप्ताह तक और पानी के बिना 5 दिन जीवित रह सकता है लेकिन वायु के बिना 5 मिनट भी जिंदा नहीं रह सकता। लेकिन इस वायु की शुद्धता निरंतर प्रदूषित हो रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वायु प्रदूषण वह स्थिति होती है जब घर और उसके बाहर वायु में इतने बाहरी तत्व मिल जाएं कि उसको ग्रहण करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक बन जाए। संगठन ने विश्व को चेतावनी दी है "पृथ्वी का वातावरण सीमित है और इस सीमित वातावरण को स्वच्छ रखने की क्षमता और भी सीमित।"

वायु को प्रदूषित करने वाले कारक हैं : ताप बिजली घर, उर्वरक व अन्य उद्योग, वस्त्र उद्योग, वाहनों से निकला धुआं और उसमें मिली हुई हानिकारक गैसें, धूम्रपान तथा घरों से होने वाला प्रदूषण आदि-आदि। एक ओर तो तरह-तरह के वायु प्रदूषण करने वाले स्रोत और दूसरी ओर आक्सीजन प्रदान करने वाले पेड़-पौधों की निरंतर कटाई-दोनों मिलकर वायु प्रदूषण और पर्यावरण को गंभीर स्थिति में पहुंचा रहे हैं। कुछ गैसें तो अत्यंत घातक हैं और वायु में इनकी मात्रा बढ़ती जा रही है जैसे सल्फर डाइआक्साइड, ओजोन, कार्बन मोनोआक्साइड, नाइट्रोजन डाई आक्साइड एवं नाइट्रिक एसिड, फ्लोरीन आदि। इसके अतिरिक्त ऐम्बेसटस, सीसा, कैडमियम, पारा, बेरीलियम और आर्सीनिक आदि अनेक पदार्थ भी वायु में ऐसे कण छोड़ने के लिए जिम्मेदार हैं जो प्रदूषण फैलाते हैं।

वायु प्रदूषण का सबसे घातक प्रभाव श्वसन तंत्र पर पड़ता है। इससे खांसी, बलगम, सांस फूलना, सिलिकोसिस, एस्बोस्टोसिस, मीसो थीलियोमा और बिसीनोसिस जैसी बीमारियां होने की आशंका होती हैं।

वायु में विष प्रवाह के स्रोत

सबसे पहले अपने घरों की ओर दृष्टिपात करें। भारत में छह लाख गांव हैं और देश की सत्तर प्रतिशत आबादी वहां रहती है। यह जनसंख्या आहार पकाने के लिए ऊपले, लकड़ियां और कृषि अवशिष्ट पदार्थों का चूल्हों में उपयोग करती है। इससे एक ओर तो वे जैव पदार्थ नष्ट होते हैं जिनका उपयोग खाद के रूप में कृषि में किया जा सकता है, दूसरी ओर इनसे निकला धुआं वायु में विष घोलता है। गांवों में महिलाओं, बच्चों और पुरुषों को होने वाले श्वास रोगों का यह धुआं मुख्य जनक है।

धूम्रपान का शौक लोगों में बढ़ता ही जा रहा है। जितने इसके खतरे हैं और जितनी चेतावनी इसके उपयोग के विरोध में दी जा रही है उतना ही इसके उपयोग में वृद्धि हुई है। नाना प्रकार की बीमारियां देने वाला धूम्रपान न केवल पीने वाले के लिए समस्या है बल्कि धूम्रपान न करने वाले भी इसकी चपेट में आते हैं क्योंकि इसका धुआं वायु में घुलता है जिसे सभी ग्रहण करते हैं।

परिवहन और यातायात के नए खनिज तेल से चलने वाले साधनों के कारण प्रदूषण की समस्या गंभीर हुई है। इससे शहरों का पर्यावरण इतना दूषित हो गया है कि मानव तो मानव पेड़-पौधे भी मुसीबत में पड़ गए हैं। वाहनों से निकले धुएं में कार्बन मोनो-आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, हाइड्रोकार्बन, एल्डीहाइड, सीसे के आक्साइड और सल्फर डाइआक्साइड प्रमुख हैं।

हमारे अधिकतर बिजलीघर ताप आधारित हैं जिनमें कोयला जलाकर बिजली पैदा की जाती है। कोयला जल जाता है और उसका धुआं आकाश में फैल जाता है। यह धुआं वायु में भारी विष वमन करता है। इस धुएं की राख में आर्सैनिक, कैडमियम, क्रोमियम, पारा, सीसा, मैगनीज, वैनेडियम, फ्लोरीन और बोरेलियम जैसे तत्व होते हैं जो सांस द्वारा हमारे और अन्य जीव जन्तुओं के फेफड़ों में पहुंचते हैं।

कपड़ा मिलों मे भी अनेक प्रकार के रसायनों का इस्तेमाल होता है। इन मिलों में निकलने वाले तत्व वायु में घुलकर पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं इनमें प्रमुख हैं रूई, धुआं, मिट्टी तेल का वाष्प, गंधक का अम्ल, नाइट्रोजन आक्साइड, क्लोरीन फार्मेल्डीहाइड और डाईआक्साइड। मिल क्षेत्र के आसपास की वायु में दूर तक कपास के रेशे उड़ते रहते हैं और फेफड़ों के रोग उत्पन्न करते हैं।

उर्वरक बनाने वाले कारखानों में फ्लोरीन गैस, सल्फर डाइआक्साइड, ट्राई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, अमोनिया अनेक हाइड्रोकार्बन और धूलिकण प्रमुख रूप से निकल कर प्रदूषण फैलाते हैं।

आकर्षक रंग लाने के लिए सीसा आधारित रंगों से उपचारित हल्दी, शीतल पेय, सांद्र सीसा आधारित छिड़कावों से उपचारित फल-सब्जी इन तत्वों को शरीर में विषाक्त स्तर तक पहुंचाते हैं। सीसे के पाइपों से आने वाले नल के पानी में भी यह तत्व मिला होता है। बहुत-से उद्योगों से निकले दूषित पानी में पारा होता है। जो प्राकृतिक जल स्रोतों में जा मिलता है और अन्ततः हमारे शरीर में प्रवेश पाता है। ऐसे जल में पाई जाने वाली मछली खाना भी हितकर नहीं है। यह तत्व हमारे शरीर में पहुंच कर अंधापन, बहरापन, कंपकंपी, मिरगी, सिरदर्द आदि पैदा करता है। डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ में टीन का अंश घुल कर उसे दूषित बना सकता है। फलों को पकाने के लिए उनमें कई बार जो धुआं छोड़ा जाता है उसमें अम्ल, क्षार आदि होते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं।

कीटनाशक दवाइयों और रासायनिक उर्वरकों से भी खाद्य पदार्थ प्रदूषित होते हैं। साग-सब्जियों, फलों, अनाजों, पशुओं के चारे आदि में इन दवाओं के अवशिष्ट रह जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

कृषि रसायन पर्यावरण में बहुत जहर घोल रहे हैं। इनमें कीटनाशक और उर्वरकों का स्थान महत्वपूर्ण है। लेकिन इनके उपयोग से होने वाले लाभ भी इतने हैं कि इन पर पाबंदी लगाना उचित नहीं होगा। इन्हीं के उपयोग से आज खाद्यान्न का प्रति व्यक्ति उत्पादन इतना बढ़ पाया है। लेकिन इनके उपयोग की विधियों को ऐसा बनाया जा सकता है कि उससे कम से कम हानि हो।

खाद्य और कृषि संगठन की एक रिपोर्ट अत्यंत चौकाने वाली है। इसके अनुसार प्रति वर्ष कम-से-कम दस लाख लोगों की मृत्यु का कारण कीटनाशक दवाएं हैं। विकासशील देशों में उर्वरकों के बढ़ते उपयोग के कारण इतना ही गंभीर नुकसान भूमि को पहुंचा है क्योंकि इसके अंधाधुंध और अज्ञानपूर्ण उपयोग के कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती है। भारत में भी बहुत से क्षेत्रों की भूमि उर्वरकों के कारण अनुपजाऊ हो गई है।

इस समस्या पर वैज्ञानिकों का कहना है कि पर्यावरण और कृषि के बीच उचित सामंजस्य बैठाना कठिन जरूर है पर असंभव नहीं है। बहुत-सी ऐसी तकनीकें हैं कि बिना कीटनाशक अथवा खरपतवार नाशक दवाओं का ज्यादा इस्तेमाल किए इनका नियंत्रण किया जा सकता है। इसी प्रकार उर्वरकों का इस्तेमाल भी कम करना चाहिए और उनके स्थान पर जैव खाद का उपयोग बढ़ाना चाहिए। ऐसे उपाय करने से ही स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों संरक्षित रह सकेंगे।

आकाश बेधती गैसें

आजकल एक समाचार ने विश्व भर के वैज्ञानिकों और पर्यावरण प्रेमियों की नींद हराम कर रखी है। यह समाचार है ओजोन परत में छिद्र होने का। दक्षिण ध्रुव प्रदेश अंटार्कटिका के वायुमण्डल में जो ओजोन परत है उसका अध्ययन करने से पता चला है कि यह परत पतली पड़ गई है। ओजोन परत में ऐसी गैसें होती हैं जो सूर्य से निकलने वाली परा बैंगनी किरणों से हमारी रक्षा करती हैं। यदि ओजोन परत कमजोर हुई या छलनी हुई तो ये किरणें सीधे हमारे शरीर पर पड़ेंगी जिससे त्वचा निरंतर काली पड़ती जाएगी, आंखों की रोशनी मन्द पड़ेगी, चर्म कैंसर होने की संभावना बढ़ेगी, शरीर पर शीघ्र वृद्धावस्था का प्रकोप होगा और इसके अतिरिक्त भी कई रोग जन्म लेंगे। यही नहीं मनुष्य के अलावा वनस्पतियों और समूचे प्राणी जगत मे लिए भी यह खतरनाक है।

ओजोन परत में आए ये विनाशक परिवर्तन मानो प्रकृति का प्रकोप हैं। एक चेतावनी है हमारे लिए कि हम प्रकृति के साथ छेड़छाड़ कर स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं और अपने विनाश के कारण स्वयं पैदा कर रहे हैं। ओजोन परत को जिन कारणों से यह क्षति पहुंची उनमें प्रमुख हैं बहुत-से रसायन जो हमारे उद्योगों के फलस्वरूप वायु में जाते हैं और ओजोन बनने की क्रिया कम होती है। इससे इसके अणु भी टूटने लगते हैं। ऐसी रसायनिक गैसों की संख्या लगभग 40 है। इनमें क्लोरोफ्लोरोकार्बन भी होता है जिन्हें संक्षिप्त में सी.एफ.सी. कहते हैं। सी.एफ.सी. यौगिक धरती को सूर्य की खतरनाक परा बैंगनी विकिरणों से बचाने वाली ओजोन परत को क्षति पहुंचाती है। कहा जाता है कि विकसित राष्ट्रों में अपना काफी सारा रासायनिक कूड़ा-कचरा अंटार्कटिका में फेंका है जिसके फलस्वरूप ओजोन परत को हानि पहुंची है। इससे पहले कि ओजोन को और क्षति पहुंचे इस ओर सक्रिय कदम उठाने की आवश्यकता है।

सी-58, कृषि विहार
नई दिल्ली-110 048

ग्रामीण सहभागिता—एक मूल्यांकन

प्रो. नीला मुखर्जी

भारत में, ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धन लोगों के लिए लम्बे समय से योजना तैयार की जाती रही है। इससे गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों को तैयार करने और उन्हें लागू करने के मामले में, जो अत्यंत लाभकारी अनुभव प्राप्त हुआ है उसकी तुलना अल्प आय वाले देश, सिर्फ चीन से ही की जा सकती है। किन्तु यह अनुभव लाभप्रद नहीं हो सका है, क्योंकि काम करके सीखने की, हमारी गति, बहुत धीमी रही है और इसलिए वांछनीय परिणाम नहीं निकल सके हैं। यद्यपि गरीबी के चंगुल से कुछ लोगों को निकालना संभव हो सका है, लेकिन बाकी लोग, अभी भी उतने ही निर्धन हैं जितना कि वे पहले थे। कुछ लोगों के रहन-सहन के स्तर में तो और भी गिरावट आई है, जबकि कुछ अन्य, गरीबी के चंगुल में फंस गए हैं और इस क्रम में और भी निर्धन हो गए हैं। ये कार्यक्रम सभी निर्धन परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने में विफल रहे हैं। आर्थिक विकास की प्रक्रिया ऐसी रही है कि वास्तविकता में, इससे सामाजिक-आर्थिक असमानताएं और बढ़ी हैं और इस क्रम में बहुत-से लोग बिल्कुल गरीब हो गए हैं।

भारत में गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रम मोटे तौर पर रोजगार के अवसर जुटाकर, बुनियादी जरूरतें पूरी करके और सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसे तरीकों से चलाए जाते हैं। रोजगार देने के अंतर्गत निर्धन लोगों की आय या उनकी क्रय शक्ति, उन्हें स्वरोजगार देकर या मजदूरी पर काम देकर बढ़ाई जाती है और इस तरह से गरीब परिवारों की निर्धनता दूर करने के सीधे उपाय किए जाते हैं। गरीबों के लिए स्वरोजगार, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम पर आधारित है। जबकि मजदूरी या रोजगार, 'जवाहर रोजगार योजना' और अन्य योजनाओं के अंतर्गत दिए जाते हैं। रोजगार कार्यक्रमों के माध्यम से प्राप्त आय, गरीब परिवारों के लिए बहुत आवश्यक है। क्योंकि इससे निर्धन परिवारों को जीवन-यापन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद मिलती है। लेकिन आय या क्रय-शक्ति के अलावा उनकी कुछ अन्य आवश्यकताएं भी हैं। इस तरह की आवश्यकताएं, निर्धन परिवारों की उत्पादकता-क्षमता और उनके दैनिक अस्तित्व से. अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। इसके अंतर्गत रियायती दरों पर खाद्य, जल-सप्लाई, ग्रामीण सड़कें, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि बुनियादी आवश्यकताएं आती हैं। इनसे सम्बद्ध कार्यक्रमों में सूखे की आशंका वाले रेगिस्तानी परिस्थितियों वाले क्षेत्रों पर ध्यान दिया जाता है जहां कृषि की दृष्टि से प्रतिकूल परिस्थितियां होती हैं और जो गरीबी बढ़ाने वाली होती हैं। जहां तक गरीबी के विभिन्न रूपों का प्रश्न है, गरीबी-उन्मूलन के सरकारी कार्यक्रमों में, आम तौर पर कम गरीबी को छोड़कर अधिक निर्धनता के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है। लेकिन जहां तक ग्रामीण विकास में लोगों को शामिल करने का सवाल है, गरीबी और ग्रामीण विकास के प्रति रवैये में काफी कमियां हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि इस तरह के सारे कार्यक्रम ऊंचे स्तर पर बनाए जाते हैं और लागू किए जाते हैं। वस्तुतः गरीबों के लिए बनाए जाने वाले किसी भी कार्यक्रम में, गरीबों को, सही अर्थ में शामिल ही नहीं किया जाता।

दृष्टिकोण में यही बुनियादी कमी है, जबकि ये सारे कार्यक्रम इसी पर आधारित हैं। अधिकांश नीति-निर्माताओं, अधिकारियों और शहरी लोगों के दिमाग में यह धारणा घर किए बैठी है कि गांवों में रहने वाले अधिकांश लोग ज्ञान-शून्य हैं, अंधविश्वासी हैं और अपनी भलाई में उनकी कोई रुचि नहीं है। योजना-दृष्टिकोण में, आंकड़े एकत्र करने में, और ग्रामीण विकास कार्यक्रम के जरिए काम संपन्न करने तथा सेवाएं उपलब्ध कराने के मामले में, यह बात साफ तौर पर दिखाई पड़ती है। यही बात, इस तरह के कार्यक्रमों पर नजर रखने और उनका मूल्यांकन करने तथा ग्रामीणों के प्रति व्यवहार और ग्रामीण विकास से संबद्ध अन्य मामलों में भी दिखाई पड़ती है। इस तरह का दृष्टिकोण कुछ गलत धारणाओं और पूर्वाग्रहों पर आधारित हैं। उच्च वर्गीय पूर्वाग्रह ही इस तरह के दृष्टिकोण के मूल में होता है। यह एक ऐसे मानसिक पूर्वाग्रह की उपज है जो मूलतः शहरी है और एक ऐसे बंद दिमाग की देन है जो ग्रामीण जीवन को, बहुत कम या बिल्कुल नहीं समझता है या उससे बिल्कुल अछूता होता है। जब तक यह रवैया कायम रहेगा हमारे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के, संतोषजनक परिणाम नहीं निकल सकेंगे।

जब तक ग्रामीण निर्धन अपने कल्याण की गतिविधियों में शामिल नहीं होंगे, हमारे ग्रामीण विकास कार्यक्रम के सीमित परिणाम ही प्राप्त होंगे। प्रश्न है ग्रामीण निर्धनों को इन कार्यक्रमों में कैसे शामिल किया जाए? क्या उन्हें भागीदार बनाने के कोई विशेष तौर-तरीके हैं। इस प्रश्न का जवाब है--हां। ग्रामीणों को शामिल करने की स्पष्ट प्रक्रिया है जिसे शुरू की जानी है। इसके अंतर्गत विकास के कार्यक्रमों को तैयार करने, उन्हें लागू करने और उन पर नजर रखने के काम में तथा कार्यक्रमों में ग्रामीण निर्धनों को शामिल करने के प्रति समूचे दृष्टिकोण में अमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। यही ग्रामीण विकास के क्षेत्र में शीघ्र ग्रामीण मूल्यांकन (आर. आर. ए.) और सहभागिता पर आधारित ग्रामीण मूल्यांकन जैसी तकनीकें अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन तकनीकों के जरिए ग्रामीण निर्धनों से न केवल बातचीत की प्रक्रिया शुरू होती है बल्कि उन्हें योजना के निर्माण और कार्यान्वयन में शामिल होने का अवसर उपलब्ध कराया जाता है। शीघ्र ग्रामीण मूल्यांकन और सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन ऐसी तकनीके हैं जो ग्रामीण विकास के कार्यक्रम तैयार करने वाले और उन्हें लागू करने वाले अधिकारियों को, गांवों को सही रूप में जानने समझने के लिए ठोस आधार भी प्रदान करते हैं। इन तकनीकों से ग्रामीणों के साथ सद्भाव के ऐसे संबंध कायम होते हैं जिनसे उन्हें समझने में मदद मिलती है।

ये तकनीकें बहुत सरल होती हैं। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि ग्रामीणों के पास जो विशाल जानकारी है उसे कैसे सामने लाया जाए?

इन तकनीकों का उद्देश्य यह है कि ग्रामीणों के साथ, अपनापन के संबंध कामय किए जाएं, ताकि उन्हें कार्यक्रमों में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया जा सके। इस तरह के प्रयत्नों से, जो प्रारंभिक आंकड़े एकत्र किए जाएंगे उनके जरिए अन्य आंकड़ों की भी जांच हो सकती है। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि ग्रामीणों के साथ किस तरीके से सद्भाव का यह संबंध कायम किया जाता है? अगर गांव के लोगों के साथ अपनापन नहीं कायम किया गया तो जो भी जानकारी सामने आएगी वो बहुत सतही होगी। अगर ग्रामीणों को कार्यक्रमों में शामिल नहीं किया सका तो ग्रामीण विकास की तकनीकों को लागू करना बहुत कठिन हो जाएगा।

जानकारी प्राप्त करने वाले हर व्यक्ति में सीखने की एक अलग प्रक्रिया होती है। व्यक्ति जितना अधिक सीखना चाहता है उतनी ही अधिक जानकारी भी एकत्र होती है। इन तकनीकों का प्रयोग खुले में और अनौपचारिक तथा इत्मिनान के वातावरण में बेहतर तरीके से हो सकता है। इसमें ग्रामीणों से साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति का रवैया ही सिर्फ महत्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि निरीक्षण की उसकी क्षमता भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है। निरीक्षण की जितनी ही अधिक क्षमता होगी, ये तकनीकें लागू करने वाला व्यक्ति, उतनी ही कुशलता से ग्रामीणों को इन कार्यक्रमों में शामिल करने के लिए प्रेरित कर सकेगा और उतनी ही अधिक जानकारी भी एकत्र की जा सकेगी। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि किस तरीके से ग्रामीणों के साथ संबंध कायम किए जाते हैं और उनकी बातें समझने और उन्हें समझाने की क्या प्रक्रिया अपनाई जाती है? इसलिए पहले से यह अनुमान लगाना कठिन है कि इस क्रम में कितनी जानकारी प्राप्त हो सकेगी? अगर ग्रामीणों के साथ साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति के दिमाग में कुछ प्रश्न हैं या कोई ऐसी लिखित सूची है जिनके आधार पर, वो ग्रामीणों से विभिन्न मसलों पर बातचीत करना चाहता है तो प्राप्त जानकारी भी कुछ अलग ढंग की होगी। ग्रामीणों की जानकारी के आधार पर इन प्रश्नों में कुछ संशोधन भी किया जा सकता है।

ग्रामीणों के साथ सामूहिक साक्षात्कार में अपने आप एक ऐसी प्रक्रिया बन जाती है जिसके अंतर्गत जो भी जानकारी एकत्र की जाती है उसका बातचीत में भाग लेने वाले ग्रुप के विभिन्न सदस्यों द्वारा जांच और अनुमोदन भी तत्काल संभव है।

ग्रामीण विकास की तकनीकों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि ग्रामीणों के पास आवश्यक जानकारी और ग्रामीण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यक विशेषता होती है। उनसे इस तरह की जानकारी ली जा सकती है, बशर्ते कि ग्रामीणों को अपने विचार सामने रखने का मौका दिया जाए।

तकनीकें

अब ग्रामीण विकास की कुछ प्रमुख तकनीकों की चर्चा कर ली जाए। इनके अंतर्गत गांवों के लोगों को सम्मिलित करके, नक्शे तैयार करने या मॉडल तैयार करने का काम किया जाता है। मिलकर नक्शे या मॉडल तैयार करने की प्रक्रिया में ग्रामीण, चौक, रंग या अन्य सामग्री की सहायता से जमीन पर या कागज पर गांव के नक्शे और मॉडल तैयार करते हैं। ये नक्शे गांवों, खलिहानों, खेतों, जलाशयों, वनों या मिट्टी आदि के बारे में हो सकते हैं। इन तकनीकों के अंतर्गत यह व्यवस्था भी होती है कि गांव के लोगों के साथ खेत खलिहानों में घूमा जाए और इस दौरान ग्राम्य जीवन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की जाए। यह बातचीत लोगों के बारे में अथवा संसाधनों, मिट्टी या टेक्नॉलाजी आदि के बारे में हो सकती है। ग्रामीण इस बारे में ऐतिहासिक ब्यौरा दे सकते हैं कि ग्राम्य जीवन के

विभिन्न पहलुओं में कैसे-कैसे बदलाव आया। लेकिन चूंकि गांव वालों के लिए इस संबंध में निश्चित तारीखें बताना मुश्किल होगा। इसलिए उन्हें यह बताया जा सकता है कि किन बड़ी घटनाओं या राजनीतिक सत्ता आदि की वजह से ये परिवर्तन हुए। जहां तक मानचित्र आदि तैयार करने का प्रश्न है, ग्रामीण चौक या अन्य सामग्री की सहायता से ऐसे चित्र या चार्ट बनाते हैं जिनमें, प्राप्त मजदूरी, खाद्यान्न की खपत, मूल्यों फसलों की उपज और वर्षा आदि जैसे विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है।

हममें से अधिकांश का यह विश्वास है कि गांवों के लोगों से सीखने के लिए बहुत कम बातें हैं। ग्रामीणों को कार्यक्रमों में शामिल करने की तकनीकों से यह बात सामने आई है कि ग्रामीणों का अनुभव बहुत अधिक और व्यापक होता है। उदाहरण के तौर पर एक गरीब ग्रामीण को आर्थिक संघर्ष को बहुत निकट से देखने का अवसर मिलता है। उसे अपने बुरे दिनों का अनुभव होता है। उसे अपनी मजदूरी, अपने खान-पान और रहन-सहन के खर्च का अनुभव होता है। उसका यह खर्च कुछ मौसमी परिस्थितियों से बंधा होता है। जीवन यापन की उसकी क्षमता, बुरे दिनों में अपना अस्तित्व बनाए रखने और प्रतिकूल परिस्थितियों को झेलने की उसकी ताकत कहीं अधिक होती है। यह सारा कुछ उसके निजी अनुभव पर आधारित होता है। इसलिए मात्र प्रश्न पूछकर उसकी समूची जानकारी और उसके अनुभव को सामने नहीं लाया जा सकता। जबकि यही जानकारी और उसका निजी अनुभव, उसकी प्राथमिकताओं और पसंद का आधार होती है। अब तक ग्रामीणों का जो मूल्यांकन हुआ है वो काफी कम है। आंकड़े एकत्र करने की दिशा में भी जो काम हुआ है वो गांवों के बारे में शहरी दृष्टिकोण पर ही आधारित रहा है।

ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में गांव के लोगों को शामिल करने की तकनीकों के फलीभूत होने में समय लग सकता है। ग्रामीणों के पास वर्षों का जो अनुभव है उसे सामने लाने में समय तो लगेगा ही। इन अनुभवों को तत्काल उपस्थित नहीं किया जा सकता। संघर्ष और श्रम की दीर्घ अवधि, मजदूरी और मूल्यों में जबरदस्त उतार-चढ़ाव, श्रमिकों की स्थिति, फसलों की पैदावार, ग्रामीण परिवारों और ऐसे ही अन्य पहलुओं पर विचार-विमर्श के लिए, पर्याप्त समय दिए जाने की आवश्यकता है। एक ग्रामीण, साफ सुथरी भाषा में अपने विचारों को प्रकट कर सकने की क्षमता नहीं रखता। उसके विचारों को जानने के लिए उससे बातचीत करनी होगी और उसे कार्यक्रमों में शामिल करना होगा।

ग्राम विकास के तकनीकों में, चूंकि ग्रामीणों को सम्मिलित करना आवश्यक है इसलिए इस प्रक्रिया से विकास के क्षेत्र में क्रांति लाई जा सकती है। वस्तुतः इन तकनीकों के जरिए जो जानकारी प्राप्त करने का लक्ष्य होता है उसे तभी पूरी तरह प्राप्त किया जा सकता है जबकि गांव के लोगों के साथ पर्याप्त सद्भाव कायम किया जाए क्योंकि उन्हीं के कल्याण के लिए ग्रामीण विकास के सारे कार्यक्रम होते हैं। इन तकनीकों के माध्यम से हमें गांव के निर्धन लोगों के बारे में जानकारी मिलती है। उनके विचारों, उनकी आवश्यकताओं और उनकी आकांक्षाओं को समझने और ग्राम्य जीवन में सुधार लाने के उद्देश्य से योजना तैयार करने और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उन्हें शामिल करने का अवसर प्राप्त होता है।

इन तकनीकों से यही तथ्य रेखांकित होता है कि ग्रामीण विकास के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया जाए। क्योंकि इसी दृष्टिकोण पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है।

अनुवाद : मनोज कुमार मिश्र

पुस्तक समीक्षा

पर्यावरण-शिक्षा के लिए

पर्यावरण और वन-संरक्षण समस्या एवं समाधान; सम्पादक—अतुल शर्मा; प्रकाशक—तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2; संस्करण 1991; मूल्य-90 रुपये; पृष्ठ-136

पर्यावरण के रक्षक हैं वन और वनों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व है हम सब का। इसलिए वन संरक्षण की समस्या को सजगता के साथ समझने की जरूरत है। इस दिशा में जहां अनेक सामाजिक कार्यकर्त्ता और संगठन सक्रिय हैं, वहीं वैज्ञानिक भी। लेकिन इनके विचार जब तक समन्वित रूप में लोगों तक नहीं पहुंचेंगे, तब तक कोई ठोस काम नहीं होगा।

इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए डा. अतुल शर्मा ने पुस्तक संपादित की है—"पर्यावरण और वनसंरक्षण समस्या एवं समाधान।" इस पुस्तक में जाने माने पर्यावरणविद् श्री सुन्दरलाल बहुगुणा एवं चण्डी प्रसाद भट्ट के साथ-साथ वन अनुसंधान से जुड़े वैज्ञानिकों तथा शोधकर्त्ताओं के आलेख एवं साक्षात्कार संकलित हैं।

'पर्यावरण प्रदूषण रोकने में वनों की भूमिका' (ओम कुमार), 'पर्यावरण प्रदूषण,वन, पर्वत और महिलाएं' (डा. श्रीमती नीरू पचौरी), 'पर्यावरण संरक्षण में युवाओं की भूमिका' (मदनस्वरूप रावत), 'गढ़वाल हिमालय में वन पर्यावरण और संरक्षण' (डा. प्रह्लाद सिंह रावत), 'जंगल और हम' (वीरेन्द्र पैन्यूली), वन संरक्षण एवं पर्यावरण' (जे. के. रावत) आदि लेख महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं।

इन लोगों के अतिरिक्त सुन्दरलाल बहुगुणा, श्री अरविन्द कुमार जैन, जे. बी. लाल तथा मनोज कुमार मिश्र से की गई सम्पादक की बातचीत कई महत्वपूर्ण के सवालों का समाधान प्रस्तुत करती है।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि हिन्दी में वैज्ञानिक जानकारी से युक्त इस विश्वव्यापी समस्या से जुड़े विषय पर बहुआयामी सामग्री एक जगह दी गई है। जनसंख्या बढ़ने के कारण सारा विश्व चिन्तित है। इतनी जनसंख्या की आवश्यकताओं की संपूर्ति के लिए और औद्योगिक विकास के लिए वनों का अंधाधुंध कटान नित नई पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दे रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि वन संरक्षण के लिए एक ऐसी वन-नीति बनाई जाए, जिसमें समाज की हिस्सेदारी हो। पढ़े-लिखे युवक इस काम में अपना रचनात्मक योगदान दे सकते हैं। समाज को वैज्ञानिक जानकारी देना बहुत आवश्यक है।

उपर्युक्त आवश्यकता की पूर्ति इस पुस्तक से हो जाती है। हिन्दी में ऐसे विषयों पर बहुत कम पुस्तकें हैं। डा. अतुल शर्मा की यह पुस्तक सरल भाषा में, रोचक ढंग से और वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत करती है। सभी संगृहीत लेखक अपने-अपने क्षेत्र के अधिकारी विद्वान हैं। अतः उनके विचार विश्वसनीय हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि लेखकों ने केवल समस्या को ही सामने नहीं रखा है, बल्कि समस्या के समाधान के लिए अपने सुझाव भी दिए हैं। पुस्तक का मूल स्वर यही है कि केवल कानून बना कर ही हम पर्यावरण को शुद्ध नहीं रख सकते, इसके लिए लोगों में पर्यावरण शिक्षा का प्रसार करना होगा। इस काम में यह पुस्तक हमारी मदद कर सकती है। इतनी महत्वपूर्ण पुस्तक के लिए तक्षशिला प्रकाशन और संपादक दोनों साधुवाद के पात्र हैं।

समीक्षा : सुबोध कुमार शर्मा
पो. बाक्स 20
श्रीनगर (गढ़वाल) 246174

(आवरण पृष्ठ II का शेष)

आज व्यापारी नैतिकता को त्याग कर अनैतिक तरीकों द्वारा शीघ्रातिशीघ्र अधिक लाभ कमाना चाहते हैं। इसके लिए वे युवा वर्ग के साथ घोर अपराध कर बैठते हैं। कई बार तो ऐसे भी मामले प्रकाश में आ जाते हैं कि आइसक्रीम वाले ने अपनी आइसक्रीम की बिक्री बढ़ाने के लिए, आइसक्रीम में नशीली दवाई मिलाई थी।

सरकार की नीति भी इस बुराई को पनपने में सहयोग करती रही है। उदाहरण के लिए सिगरेट और शराब लें। आज इन नशीले पदार्थों का जिस मात्रा में, जिस व्यापक भव्यता के साथ विज्ञापन के माध्यम से प्रचार किया जा रहा है, उसके कारण अपरिपक्व व्यक्ति शीघ्र इसकी गिरफ्त में आ जाता है। सरकार को क्योंकि इन नशीले पदार्थों से आमदनी होती है इस कारण वह इन पर पूर्ण प्रतिबंध नहीं लगाती।

युवा वर्ग जो कि देश का भावी कर्णधार है यदि इन व्यसनों में भटक कर रह गया तो देश का कल्याण सम्भव नहीं। अतः नशे की इस दुष्प्रवत्ति को शीघ्र दूर किया जाना आज की आवश्यकता है। इसके लिए कुछ सुझाव निम्न दिए जा सकते हैं।

नशे जैसी गलत आदत को खत्म करने के लिए प्रत्येक मां-बाप का यह कर्तव्य बनता है कि वह अपने बच्चों, खासकर जो युवावस्था में पर्दापण कर रहे हैं उन पर ध्यान रखें कि कहीं वे इन वस्तुओं के सेवन के आदी तो नहीं बन गए हैं।

इन बढ़ते बच्चों के संगी-साथियों के विषय में भी अभिभावकों को पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। बुरी संगत में यह प्रवृत्ति शीघ्र जोर पकड़ती है।

यदि किसी कारणवश कोई युवा इन नशीले पदार्थों का आदी बन भी जाए तो उसे सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक चिकित्सा दी जाए। यह कार्य अभिभावकगण, बड़ा भाई-बहिन, दोस्त सहज ही कर सकते हैं। उन्हें चाहिए कि नशीले पदार्थ उपभोग करने के विरुद्ध ऐसे व्यक्ति की इच्छा शक्ति जाग्रत करें तथा उन्हें अकेला कम-से-कम रखा जाए। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का सुफल प्राप्त न होने की स्थिति में औषधि चिकित्सा के लिए अस्पतालों के डाक्टरों की सलाह लेनी चाहिए।

नशीले पदार्थों का सेवन करने वाले की शारीरिक और मानसिक शक्तियां क्षीण होने लगती हैं। अतः उन्हें उचित मात्रा में ग्लूकोज व अन्य पोषक पदार्थ, विटामिन दिए जाने चाहिए।

नशीले पदार्थों के सेवन से होने वाले दुष्परिणामों को रोकने के लिए सरकार को कठोर कदम उठाने चाहिए। जो व्यापारीगण अपने निहित स्वार्थ के कारण इन पदार्थों का व्यापार करते हैं, उनको शीघ्र ढूंढ निकाला जाए तथा उनके विरुद्ध शीघ्र कड़ी कार्यवाही की जाए। इस कार्यक्रम के लिए पुलिस प्रशासन का सहयोग अपेक्षित है।

नशे के इस जानलेवा दलदल का मुकाबला करने के लिए युवा वर्ग को यह दृढ़ प्रतिज्ञा करने की आवश्यकता है कि वे न तो इन पदार्थों का गुलाम बनेंगे और न ही किसी अन्य को बनने देंगे। इस कार्य में अभिभावकगण को भी अपनी सक्रिय भूमिका निभानी होगी। तभी हमारे देश के महेश जैसे होनहार, विलक्षण प्रतिभा के धनी, युवा शक्ति का सदुपयोग हो सकेगा। • □

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुर शाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित